पुरातत्व-परिचय

लेखक
परमेश्वरीलाल गुप्त



प्रकाशक
किताब महल • इलाहाबाद

दो शब्द

पुस्तक का विषय नाम से ही स्पष्ट है। उसके विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। कहना अपने सम्बन्ध में है। इस पुस्तक के लिखने का मैं कदापि अधिकारी नहीं हूँ। पर, इसकी धृष्टता मैंने जान और समझ-बूझ कर की है।

आज पुरातत्व-सम्बन्धी जितनी भी पुस्तकें हैं वे सब अंग्रेजी में हैं। भारतीय पुरातत्व के जितने विद्वान् हैं वे सब अंग्रेजी में लिखते हैं। इस कारण हमारे हिन्दी-साहित्य का कोष इस विषय से खाली है। उंगली पर गिनने के लिए भी एक पुस्तक नहीं है। दूसरी ओर जनसाधारण इतने अज्ञान हैं कि पुरातत्व उनकी दृष्टि में उपहास का विषय है, जबकि प्राचीन संस्कृति को प्रकाश में लाकर चकाचौंध करने का श्रेय उसी को है। अतः जनसाधारण और विद्वानों को उदासीन देख कर मन ने विद्रोह किया और उसी विद्रोह का परिणाम यह पुस्तक है।

इस प्रयत्न में मैं कितना सफल हुआ हूँ इसका लेखा-जोखा मुझे करने की आवश्यकता नहीं। यह वही करेंगे जिनके हाथों में यह जायगी। हाँ इतना बता देना अनुचित न होगा कि पाण्डुलिपि श्री जयचन्द्र विद्यालंकार स्वर्गीय रायबहादुर काशीनाथ नारायण दीक्षित (भारतीय पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर), राहुल सांकृत्यायन और डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल की आँखों के नीचे से गुजर चुकी है। उन्हीं के प्रोत्साहन से यह आपके सामने है।

पुस्तक १९४१ में अप्रैल से अगस्त के बीच फतहगढ़ सेन्ट्रल जेल के भीतर लिखी गयी थी। मेरे आदरणीय अध्यापक रेवरेण्ड आस्टिन जेम्स ने जेल में पढ़ने के लिए कुछ पुस्तकें भेजी थीं जिनमें एक थी सर लियानर्ड वूली लिखित डिगिंग अप द पास्ट'। उस पुस्तक के पढ़ने के बाद मेरे मन में उसका अनुवाद करने का विचार उठा और अनुवाद कर भी लिया

गया। लेकिन उसके बाद ही 'युनिवर्सिटी आव नालेज' सीरीज़ का 'डान आव सिविलाइजेशन' और प्रोफेसर गार्डनर का 'एचीवमेंट आव आर्क्यालॉजी' पढने को मिला। उनके पढने के बाद मुझे ऐसा लगा कि उक्त अनुवाद के स्थान पर स्वतन्त्र पुस्तक लिखी जाय जिसमे इन दोनो पुस्तको का भी प्रचुर उपयोग किया जाय। अत मैंने रूप-रेखा तो ऊले वाली पुस्तक की ही रखी पर उसे लिखी नये सिरे से। पर इनमें एक बहुत बडी कमी यह थी कि पुस्तक की पृष्ठभूमि भारतीय पुरातत्व न होकर मिस्र, मेसोपोटामिया, सुमेर आदि का पुरातत्व था। लिखते समय इस कमी की ओर मेरा ध्यान न जा सका था। जेल से बाहर आने पर जब पाडुलिपि विद्वानो के हाथ में गयी तो उन्होने इसकी ओर निर्देश किया, और उसी निर्देश के आधार पर पुस्तक भारतीय पुरातत्व की पृष्ठभूमि बना कर फिर से लिखी गयी और अब उसी रूप मे आपके सामने है। इस पुस्तक के मौलिक होने का दावा मेरा नही है। मैं आज भी पुरातत्व का विद्यार्थी हू, विद्वान् नही। मेरा ज्ञान दूसरो से उधार लिया हुआ है। मैं उपर्युक्त सज्जनो का कृतज्ञ हू, उनसे मुझे सदा सत्परामर्श और प्रोत्साहन मिलता रहा है। साथ ही मैं सारनाथ सग्रहालय के सग्रहाध्यक्ष भाई अद्रीशचन्द्र बनर्जी का भी आभारी हू जिन्होंने साहित्य-सामग्री से मेरी भरपूर सहायता की और लेखन-काल मे बराबर अपनी सलाह से मुझे लाभान्वित करते रहे।

आज पुस्तक ६ बरस के बाद प्रकाशित हो रही है। इस बीच यह कई प्रकाशकों का मुँह देख चुकी है। प्रकाशित करना सबने स्वीकार किया पर कागज के अकाल ने इसे प्रकाशित होने नही दिया। अब किताब-महल के सचालक इसे प्रकाशित कर रहे है। इसे मैं उनकी कृपा ही मानता हूं क्योकि अभी भी कागज का अभाव प्रकाशको के सिर पर ज्यो का त्यो नाच रहा है।

काशी
प्रथम स्वतन्त्रता दिवस

परमेश्वरीलाल गुप्त

न्यगाय

विषय-सूची

पुरातत्व-प्रवेश

प्रथम अध्याय

प्राक्कथन

द्वारा उस कालके इतिहास के ज्ञान की सम्भावना का अनुमान कर लें, तो भी प्रश्न होता है कि लिपि-काल से पूर्व की अवस्था का ज्ञान कैसे हो सकता है? इसी प्रश्न का उत्तर पुरातत्वविद् अपने विज्ञान की सहायता से देता है। वह ऐसी सामग्री उपस्थित करता है जिसके आधार पर इतिहासकार ऐतिहासिक घटनाओ और लोगो के जीवन तथा संस्कृति की रूपरेखा अंकित कर सकने मे सफल होता है। पुरातत्वविद् हमें भूतकाल का जो ज्ञान देता है वह उसे भूमि मे दबे हुए तत्कालीन वस्तुओ के अवशेषो से प्राप्त करता है। अस्तु,

साधारण दृष्टि मे पुरातत्व का अर्थ भूमि मे दबी प्राचीन वस्तुओ को खोद कर प्रकाश मे लाना है। स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि किसी प्राचीन वस्तु के भूमि से खोद कर ऊपर लाने का तात्पर्य क्या है? इसके उत्तर मे जब पुरातत्वविद् खुदाई मे मिले बर्तन, औजार, गहनो अथवा मनको को दिखा कर कहता है कि वे पाच या छ हजार वर्ष पुराने है तो हम एक बार सुन कर चौंक उठते है और उसकी प्राचीनता की सराहना करने लगते है। हमारे इस आश्चर्य का कारण उन वस्तुओ की आयु उतनी नही होती जितना कि वे वस्तु स्वय। यदि आयु की बात हो तो डिनोसर[1] के प्रस्तरभूत अडो की तुलना मे उन वस्तुओ की आयु नगण्यही ठहरेगी और इसीलिए जब हम भौगर्भिक-आयु पर दृष्टि डालते है, तो मानव-संस्कृति के पांच, छ या दस हजार वर्ष की महत्ता कुछ भी नहीं रह जाती। इसलिए उन वस्तुओ की महत्ता इस बात मे समझी जाती है कि वे उन लोगो और उनकी सभ्यता एव संस्कृति पर प्रकाश डालते है जो हमारी ही तरह रहे होगे और जिनकी शृखला आज की हमारी सभ्यता और संस्कृति से जुडी हुई है। आज जब हम मोहे-जो-

---

[1] अति प्राचीन युग का छिपकली के आकार का एक विशालकाय जन्तु जो अब अप्राप्य है।

आकाश से चित्र लेने की एक पद्धति। (पृष्ठ २७)
[शिकागो विश्वविद्यालय की प्राच्यशाला से]



आकाश से लिया गया एक प्राचीन स्थल का चित्र (पृष्ठ २७)
[शिकागो विश्वविद्यालय की प्राच्यशाला से]



मोंहें-जो-दड़ो की एक सड़क (पृष्ठ १३)
[भारतीय पुरातत्व विभाग से]

मोंहें-जो-दड़ो में प्राप्त मनके और गहने (पृष्ठ १३)
[भारतीय पुरातत्व विभाग से]

दडो और हडप्पा की नालियों को देखते है, तो उसमें अपनापन जान पडता है, जब हम वहाँ मिले प्रसाधन-सामग्री को निरखते है, तो मन में एक अजीब ममता का सचार होने लगता है। जब हम किसी सग्रहालय में सुरक्षित किसी वस्तु की आज की बनी वस्तु के साथ तुलना करते है, तो हम उनमें एक अजीब समता देख कर आश्चर्य-चकित रह जाते है, और आखें फाड कर इस प्रकार देखने लगते है मानो हमारे सामने क्षितिज खुल पडा है। इस प्रकार हम देखते है कि पुरातत्व का उद्देश्य मानव-सभ्यता की प्रगति का अनुसधान है।

मनुष्य अपने को अपने पूर्व इतिहास से अलग करने में असमर्थ-सा है। वह सदैव पूर्ववर्ती बातों के प्रति चेतन्य रहता है और अपने पूर्व अनुभवों पर ही अपने विचारों और कार्यों का निर्माण करता है। जब उसके सामने उसकी अपनी कोई परम्परा नहीं होती अथवा जब वह रूढि के रूप में जड हो जाती है तो मानव-संस्कृति का विकास रुक जाता है। इसलिए जब किसी पुरातनकालीन संस्कृति से आज की संस्कृति का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है तो उसका यही अर्थ होता है कि हमारी वर्तमान संस्कृति की परम्परा का निर्माण जिन लोगों द्वारा हुआ है वे हमारी ही तरह अनुभूत होकर सामाजिक एव व्यक्तिगत रूप में आगे बढे थे। हम उनकी महत्ता उसी अनुपात से समझ सकते है जिस परिमाण में उनकी संस्कृति शृंखला हमारी संस्कृति शृंखला से जुडी होती है।

आज से कुछ वर्षों पूर्व—ईसा की इस शताब्दी से पूर्व—भारतीय सभ्यता संस्कृति और इतिहास की आयु ढाई-तीन हजार वर्ष से अधिक पुरानी नहीं मानी जाती थी और उसी को आधार मान कर लोग आगे खोज की चेष्टा करते थे। उस समय लोगों का यही की आदिम मानव की सभ्यता और संस्कृति बहुत ही उन्नत और विकसित अवस्था में मिलती थी, पर उसके विकास का इतिहास लोगों के सामने न था। इस कारण लोग हमारी संस्कृति देख कर अवाक् रह जाते थे किन्तु आज पुरातत्त्व

सम्बन्धी खोज के परिणाम स्वरूप लोगो के सामने यह बात तथ्य बन कर आयी है कि भारत की सांस्कृतिक विकास का आरम्भ पांच हजार वर्ष से कही अधिक पूर्व हुआ था और आज सभ्यता के तत्कालीन स्रोत मे घुस कर यह जाना जा रहा है कि स्थान और परिस्थितियो में पड कर मनुष्य के जीवन ने जो विभिन्न रूप धारण किये है उनका मूल स्रोत एक था। अब हम यह अनुभव करने लगे है कि भूत के इस ज्ञान के प्रकाश मे वर्तमान और भविष्य की उन्नति की कल्पना और उसका नियन्त्रण किया जा सकता है।

* * *

हम संग्रहालयो की आलमारियों मे जो नाना प्रकार के बर्तन, गहने, औजार, मनके आदि बडे यत्न से सजे हुए देखते है, तो स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि पुरातत्वविद् उनके आधार पर किस प्रकार अतीत की अवस्था का अनुमान करता है। पर सच बात तो यह है कि पुरातत्वविद् की दृष्टि मे उनका कोई महत्त्व नही होता। उसके लिए उनका महत्त्व उसी समय होता है जब वह भूमि मे अन्य वस्तुओ के साथ दबे पाये जाते है। वहाँ से हटाये जाने के बाद उनकी पुरातात्विक महत्ता समाप्त हो जाती है और सग्रहालयो में उनका सग्रह केवल कला की दृष्टि से किया जाता है।

पुरातत्व की दृष्टि से अध्ययन के निमित्त प्राचीन काल की वस्तुओ को प्राप्त करने के लिए व्यवस्थित और विशेष ढग से खुदाई करने की आवश्यकता होती है। कभी-कभी आकस्मिक खुदाई मे भी महत्त्व की वस्तुए मिल जाती है, पर इस प्रकार की खुदाई करने वालो का उद्देश्य अधिकाशतः पुरातात्विक न होकर कला-सम्बन्धी अथवा किसी प्रकार का आर्थिक ही होता है और वह वही तक सीमित भी रहता है। पुरातत्वविद् मानव होने के नाते अलभ्य और कलात्मक वस्तुओ का आनन्द तो लेता है, किन्तु साथ ही वैज्ञानिक होने के नाते उनके सम्बन्ध मे अधिकाधिक जानने के लिए उत्सुक भी रहता है और उन वस्तुओ के सम्बन्ध मे

जानकारी ही उसके सम्मुख प्रधान विषय होता है। उसके लिए खुदाई का अर्थ बहुत कुछ निरीक्षण परीक्षण, संग्रह और व्यवस्था होती है। सुव्यवस्थित ढंग और अललटप्पू तरीके से काम करने वालों की कार्य प्रणाली में महान् अन्तर होगा, यह तो स्पष्ट ही है किन्तु उनके कार्यों के परिणाम में भी महान् अन्तर होता है यह पुरातत्व में प्रत्यक्ष लक्षित होता है।

मान लीजिये किसी किसान को कहीं किसी खेत में हल चलाते या खोदते समय कोई पत्थर या धातु की मूर्ति बरतन, औजार या गहना मिल जाता है। वह एक दूसरे के हाथ से होता हुआ बाजार में बिकने आता है और फिर दूकानदार के यहाँ से किसी संग्रहालय या किसी निजी संग्रह में पहुँच जाता है। ऐसी अवस्था में किसी को मालूम नहीं हो पाता कि वह कहाँ से और किस अवस्था में प्राप्त हुआ। वह अपनी परिस्थितियों से इस प्रकार अलग कर दिया गया होता है कि उसका निजत्व उसी तक सीमित रह जाता है। ऐसी अवस्था में कला की दृष्टि से तो उस वस्तु की सराहना की जा सकती है, पर प्रश्न यह होता है कि उसका ऐतिहासिक महत्व क्या है अथवा उससे ऐतिहासिक तथ्य पर क्या प्रकाश पड़ता है।

कलकत्ता के भारतीय संग्रहालय में नव्य प्रस्तरयुग की वस्तुओं का एक विशाल संग्रह है। यह सामग्री विभिन्न व्यक्तियों ने विभिन्न स्थानों और विभिन्न समयों में एकत्र की थी। उनके सम्बन्ध में आज किसी प्रकार की जानकारी संग्रहालय में प्राप्त नहीं है। फलस्वरूप यह यद्यपि कहा जा रहा है कि ये नव्य प्रस्तर युग की चीजें हैं, आज हम उस काल की संस्कृति की रूपरेखा के सम्बन्ध में किसी प्रकार का अनुमान नहीं कर सकते। मथुरा के कर्जन संग्रहालय में उस क्षेत्र से प्राप्त मूर्तियों का एक बहुत बड़ा संग्रह है। उनसे मथुरा की कला शैली के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी हुई है पर उनके आधार पर हम वहाँ के विभिन्न काल

के इतिहास पर प्रकाश नहीं डाल सकते। इसका एक मात्र कारण यही है कि वे आज उन परिस्थितियों से अलग कर दी गयी हैं जिनमें वे दबी हुई थीं। वहाँ परखम नामक स्थान से प्राप्त सुप्रसिद्ध मूर्ति के सम्बन्ध में कुछ लोगों का कहना है कि वह यक्ष की मूर्ति है लेकिन कुछ लोग उसको द्वारपाल बताते हैं। परिस्थितियों से वह इस प्रकार अलग हो गयी है कि यक्ष-पूजा के प्रमाण की सामग्री होते हुए भी हम आज उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते। इसी प्रकार नागपुर के संग्रहालय में बेलननुमा मुहर है जिसकी रूपरेखा बवेरु में पायी जाने वाली मुहरों के समान है और उस पर आलेख भी उसी ढंग का है। पर वह कहाँ से और किस परिस्थिति में प्राप्त हुआ था यह किसी को ज्ञात नहीं है, इस कारण आज हम यह अनुमान करने में असमर्थ हैं कि उस मुद्रा का भारत से किसी प्रकार का सम्बन्ध है।

जब कभी ऐसी अवस्था में प्राचीन वस्तुएं मिलती हैं तो विद्वानों को अपने पूर्व संचित ज्ञान के बल पर अनुमान करना पड़ता है कि वह किस प्रदेश और किस काल की वस्तु है। यदि किसी प्रकार इस अनुमान का तुक लगा तो उस वस्तु के सम्बन्ध में यह भी अटकल लगाना होता है कि किस कला-शैली से उसका सम्बन्ध है। इस प्रश्न पर साधारणतया अधिकांश विद्वान एक मत नहीं हो पाते। जब इस प्रश्न पर एक मत नहीं होता तो वह विद्वानों के लिए एक पहेली और जनसाधारण के लिए उलझन बन कर रह जाता है।

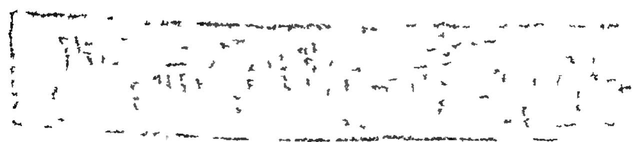
यदि कहीं दुर्भाग्यवश प्राप्त वस्तु कोई मिट्टी का बर्तन हो या कोई ऐसी वस्तु हो जिसका कोई कलात्मक महत्त्व न हो तो ऐसी अवस्था में उस वस्तु का ऐतिहासिक महत्त्व चाहे कितना भी रहा हो, नष्ट हो जाता है। सन् १९०४ में एक सरकारी कर्मचारी को बलूचिस्तान के किसी भाग में कुछ चित्रित मृण्पात्र मिले थे, पर जिस प्रकार वे प्राप्त हुए उनके कारण उस समय कोई भी यह अनुमान न कर सका कि वे पात्र ताम्र-

हड़प्पा के समाधि स्थल के दो स्तर (पृष्ठ ६०)

[भारतीय पुरातत्त्व विभाग से]



रत्न-खचन (पृष्ठ ६०)
[काहिरा संग्रहालय से]



भारत और मेसोपोटामिया के बीच सम्बन्ध व्यक्त करने वाला एक फलक (पृष्ठ ७८)
[शिकागो विश्वविद्यालय की प्राच्यशाला]

युग के हैं। २६ वर्ष बाद जब सर आरल् स्टेन् ने उस क्षेत्र के विभिन्न खण्डहरों की छानबीन की तो यह बात प्रकाश में आयी कि बलूचिस्तान के खंडहरों में भारत की ताम्रयुगीन संस्कृति दबी पड़ी है। इसी प्रकार हड़प्पा से गत शताब्दी में ही एक मुद्रा मिली थी पर उस समय यह कल्पना भी न हो सकी कि वह सैन्धव-सभ्यता की प्रतीक है। जब उसी ढंग की मुद्राएं मोहेंजो-दड़ो में मिली तब लोगों का ध्यान उस मुद्रा की ओर गया और सर जान मार्शल ने हड़प्पा की खुदाई का आयोजन किया।

इसके साथ ही यदि इस प्रकार की एकाकी पायी जाने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में गलत सूचनाएं प्राप्त हों तो उनसे भी उस वस्तु के वास्तविक महत्व के आंकने में भयंकर भूल हो जाती है। सबसे पहले डाक्टर भंडारकर ने मोहेंजो-दड़ो का निरीक्षण किया था। पर वहां पायी जाने वाली छोटे आकार की ईंटों को देख कर उनकी यह धारणा हुई कि यह स्थान बहुत पुराना नहीं है। इस प्रकार एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बहुत दिनों तक उपेक्षित बना रहा और भारत की एक प्राचीन संस्कृति प्रकाश में न आ सकी। यह तो साधारण सी बात है। कुछ अरबवासियों को शाम के किसी धार्मिक स्थान के ध्वंसावशेष में चाँदी का एक पात्र मिला जिस पर कुछ उत्कीर्ण चित्र अंकित थे। इनमें से कुछ चित्रों की पहचान सफलता पूर्वक ईसा और उनके शिष्यों से की जा सकती थी। वह पात्र किसी प्रकार अमेरिका पहुँचा। उसके विक्रेता के सम्मुख कहानी थी—यह अन्तिओक में प्राप्त हुआ है और ईसा के शिष्य वहीं सर्व प्रथम ईसाई नाम से पुकारे गये थे। बस इसी आधार पर लोगों को विश्वास दिलाने की चेष्टा की गयी कि यह वही पवित्र पात्र है जिसका उपयोग ईसा के अन्तिम भोज के अवसर पर किया गया था और उस पर तत्कालीन शिष्यों के चित्र अंकित हैं। पर वास्तविक बात तो यह थी कि वह अन्तिओक से सौ मील से भी अधिक दूर प्राप्त हुआ था और उसकी शैली देखने से जान पड़ता था कि उसका निर्माण ईसा की मृत्यु से कम से कम तीन

सौ वर्ष बाद हुआ होगा। इस प्रकार का भ्रम उत्पन्न हो जाने पर उनका दूर करना बहुत कठिन होता है और उस वस्तु की पुरातात्विक महत्ता नष्ट हो जाती है। इस पात्र के सम्बन्ध में पुरातात्विक ज्ञान को हानि कम पहुँची क्योंकि झूठी कहानी का जानबूझ कर प्रचार किया गया था और उसका उद्देश्य भी स्पष्ट ही था। उससे कुछ व्यक्तियो को धोखा भले ही हुआ हो, किन्तु कला-विशारदो को ईसा पश्चात् की प्रथम चार शताब्दियो का ज्ञान जो अन्य साधनो से प्राप्त हुआ था, उसमे उन्हे किसी प्रकार का उलट फेर न करना पड़ा। किन्तु जहाँ किसी वस्तु के सम्बन्ध मे जानकारी अस्पष्ट या अधूरी होती है, वहाँ अपने वातावरण एव परि-स्थितियो से विलग की हुई वस्तु विशेषज्ञो को भी भ्रम और सन्देह मे डाल देती है। एक पाश्चात्य विद्वान् को चीन से प्राप्त काँस्य की एक सिह की मूर्ति, जो मूल रूपेण सम्भवत: चीन की कला है, हितानी कला के कतिपय ज्ञात अवशेषो से मिलती-जुलती जान पड़ी। इसी आधार पर उन्होने उसका सम्बन्ध हितानी कला से जोड दिया और उसे अन्य हितानी कला वस्तुओ के परखने का माप-दड बनाया। इस प्रकार के अनु-मान से सत्य के निकट पहुँचने की अपेक्षा उससे दूर जा पहुँचने की अधिक सम्भावना होती है। रस्किन ने अपने कला विषयक निबन्ध मे भार-तीय-कला को भारतीय दृष्टि से न देख कर यवन-कला के चश्मे से देखने का यत्न किया है, इसी कारण उसे यहाँ की कला मे भीमकाय आकृतियो के सिवा कुछ नही दिखाई पड़ा है। कुछ साल पहले सारनाथ मे कुछ पीतल की मूर्तियाँ मिली थी। उन्हे देख कर लोगो ने अनुमान किया था कि वे वही ढाली गयी होगी। पर उसी ढग की मूर्तियाँ जब नालन्दा की खुदाई करने पर मिली तो यह जान पड़ा कि वे किसी एक स्थान की न होकर पूर्वीय मध्यकालीन सस्कृति की द्योतक है। इस प्रकार के अपूर्ण ज्ञान के आधार पर अनुमानित विवेचन के कारण बहुधा भ्रम उत्पन्न हो जाया करता है।

इसके विपरीत, ऐसी वस्तु जिसका अपना कुछ भी मूल्य न हो केवल अपने सहयोग और परिस्थिति के कारण उच्चतम महत्व का ऐतिहासिक साधन हो सकता है। मोहेंजो-दड़ो के ऊपरी सतह पर जो मुद्रायें मिली थी उनका महत्व तभी आंका जा सका जब मिट्टी में दबे पत्थर की एक छुरी से स्वर्गीय राखालदास बनर्जी का हाथ कट गया। यदि वह पत्थर की छुरी अपने स्थान पर दबी न मिलती तो यह कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि उसके नीचे ताम्रयुगीन सभ्यता दबी पड़ी है। जयपुर राज्य में बैराट नामक स्थान में खुदाई के समय एक स्तूप मिला जिसमें पत्थर का प्रकार बना था। शिला प्रकारों को देखने से ऐसा आभास होता था कि उनसे पूर्व वहाँ काष्ठ का प्रकार रहा होगा। पर इस धारणा की पुष्टि के लिए प्रमाण की आवश्यकता थी। शिला प्रकार के नीचे जो छेद थे उनमें लकड़ी के जले हुए कोयले मिले उनसे यह स्पष्ट हो गया कि मौर्यों के पतन से पूर्व उस स्तूप में काष्ठ का प्रकार था जो पीछे जल गया। यदि लकड़ी के कोयले न मिलते तो इस धारणा की पुष्टि न हो पाती। इसी प्रकार रोडेशिया (दक्षिण अफ्रिका) के जिमबाब्वे नामक स्थान के कुछ प्रास्तरिक ध्वंसावशेष बहुत दिनों से पुरातत्वविदों को उलझन में डाले हुए थे। उनके सम्बन्ध में नाना प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रचलित थी। कोई कहता उनका निर्माण फोनेशिया निवासियों ने किया। कोई कहता वह ओफार था। यहाँ सुलेमान को सोना मिला था। कोई उस मिस्र की सीमा का चौकी बताता। लेकिन जब वैज्ञानिक पद्धति पर उसकी खुदाई हुई और उसके नींव में एक निरर्थक चीनी (पोरस्लन) का टुकड़ा मिला तो यह प्रमाणित हो गया कि यह भग्नावशेष मध्यकालीन मन्दिर था जो अफ्रीका की अपनी निजी शैली में बना था। यदि उसी स्थान की खुदाई केवल आर्थिक लाभ की दृष्टि से बेतुके ढंग से की जाती तो चीनी (पोरस्लेन) के टुकड़े की ओर या तो ध्यान ही न जाता और यदि जाता भी तो उसकी साक्षी पर कोई विश्वास न करता। उस समय सिद्ध

ढग से खुदाई की जाती उसके कारण लोग उसको वैज्ञानिक प्रमाग मानने मे सकोच करते। किन्तु वैज्ञानिक पद्धति पर खुदाई करने के परिणाम स्वरूप वह टुकडा जिस अवस्था मे प्राप्त हुआ था उस पर किसी को सन्देह करने की गुजाइग न थी। उसने न केवल किवदतियो से फैले भ्रम को दूर कर दिया वरन् आफ्रिका के इतिहास मे नवीन पृष्ठ भी जोडे।

*

धन के लिए पुराने स्थानो की खुदाई शायद उतनी ही पुरानी है जितना कि मनुष्य और उसकी सभ्यता, पर ज्ञान प्राप्ति के लिए पुरातत्व विज्ञान का विकास अभी हाल ही मे हुआ है। इस विज्ञान ने अपने जीवन के साठ-सत्तर वर्ष मे ही कितने ही आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाये है। सुव्यवस्थित खुदाई द्वारा ही आज हम मानव-इतिहास के उन हजारो वर्षो को जान सके है जिनके सम्बन्ध मे एक शताब्दी पूर्व हम एक दम कोरे थे। इतना ही नही, लिखित साधनो पर अवलम्बित इतिहास से हमे केवल युद्ध, कुछ अन्य राजनीतिक घटनाये और राजवशावलियाँ ही ज्ञात होती है, वे भी वही जिन्हे तत्कालीन लेखको ने लिखना उचित समझा। प्राचीन साहित्य से जो कुछ प्रकाश तत्कालीन अवस्था पर पडता है, उसका पुरातात्विक अन्वेषण से समर्थन तो हुआ ही है, साथ ही विगत काल के उद्योग और कला के उज्ज्वल नमूने, उपासना के मन्दिर, निवास के गृह, और जीवन के वातावरण भी अपने मौलिक रूप मे प्रकाग मे आये है। इस प्रकार पुरातत्व हमारे सामने विगत काल का सामाजिक इतिहास उपस्थित करता है साथ ही उसके जानने का वह साधन भी उपस्थित करता है जो अन्य साधनो से दुष्प्राप्य है।

जब तक मोहे-जो-दडो और हडप्पा की खुदाई नही हुई थी हम सैन्धव-सभ्यता की कल्पना भी न कर सके थे। श्लीमैन के मेसिने और सर आर्थर ईवान्स के क्रीट की खुदाई करने पर ही मिन सभ्यता का ज्ञान हो सका। इसके सम्बन्ध मे एक शब्द भी लिखित प्राप्त न था,

फिर भी आज हम मिस्र शक्ति के उत्थान और पतन का इतिहास जान सकने में समर्थ हुए है। आज हम मिस्र के राजप्रासाद की भव्यता और विशालता को उसी रूप में आँक सकते है जिस रूप में वह अपने समय में रहा होगा। मिस्र का सारा प्राचीन इतिहास पुरातात्विक प्रयत्नों से ही प्रकाश में आ सका है और वह भी अद्भुत विस्तार के साथ। आज सुमेर और हितानी के भूले हुए साम्राज्यों और बबर असुर और मोहें जो-दड़ो के प्राचीन निवासियों के जीवन का जो ज्ञान हमें प्राप्त हुआ है वह खुदाई का ही प्रताप है। इस प्रकार के ज्ञान का विस्तार यूरोप, मध्य अमेरिका, चीन, तुर्किस्तान, भारत आदि देशों में की जाने वाली खुदाइयों से नित्यप्रति बढ़ता जा रहा है और विगत काल के मनुष्यों के प्रति हमारी जो धारणाएं थी उनमें परिवर्तन होता जा रहा है।

* * *

पुरातात्विक खुदाई में निकली वस्तुओं और उनके ऐतिहासिक महत्व को देख कर साधारण मनुष्य के मन में कौतूहल होता है कि आखिर ये वस्तुएं किस प्रकार भूमि में दब जाती है और फिर उनके खोद निकालने की आवश्यकता होती है।

पुरातत्व की दृष्टि से समाधि और समाधि-स्थल बड़े महत्व के समझे जाते है और पुरातात्विक ज्ञान के महत्वपूर्ण खजाने कहे जाते है। जहाँ तक प्रश्न का सम्बन्ध इनसे है यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि वहाँ मिलने वाली वस्तुएं प्रायः जान बूझ कर रखी गयी होती है जो अब तक सुरक्षित दशा में पायी जाती है। यह प्रश्न उस समय उठता है जब हम भवनों और नगरों को भूमि-तल के नीचे अदृश्य और दबा पाते है। वस्तुतः बात यह है कि नगर और उसके भवन भूमि-तल के नीचे नहीं दबते, वरन् भूमि-तल ही धीरे धीरे ऊपर को उठती है। यद्यपि इस क्रिया का हमें आभास नहीं होता तथापि यह नित्य हमारे चारों ओर होता रहता है। जहाँ भी कोई स्थान निरन्तर बसा रहा है, यह बात होती रही है। प्राचीन

काल मे नगरो की सफाई के लिए आजकल की तरह की व्यवस्था बहुत कम थी। गलियाँ ही कूड़ा कर्कट फेंके जाने के स्थान रहे हैं। आज भी अनेक स्थानो पर गलियो में ही कूड़ा फेंका जाता देखते हैं। इस तरह निरन्तर कूडा फेंके जाने के कारण गलियों का धरातल धीरे-धीरे ऊँचा होने लगता है। यदि गलियो की फिर से मरम्मत हुई और रबड ऊपर ही डाल दिया गया तो गली का धरातल स्वत. ऊँचा और उस गली के मकानो का धरातल नीचा हो जाता है। ऐसी अवस्था मे जब कभी मकान ध्वस्त होता है और नये सिरे से उसका निर्माण किया जाता है तो, निश्चय ही गली के धरातल का ध्यान रख कर उसका धरातल बनाया जाता है। ऐसी अवस्था मे यह निश्चित है कि वह धरातल मकान के पहले धरातल से ऊँचा होगा और पहला फर्श नीचे पट जायेगा अथवा पाट दिया जायेगा। इस प्रकार पुराने मकानो की नीव अछूती ही दब जाती है। यही व्यवस्था एव परिवर्तन समय-समय पर होते रहते हैं और एक के ऊपर एक मकान के चिह्न अक्षुण्ण रूप से दबते चले जाते है। इसके स्पष्ट चिह्न प्राचीन स्थानो के भग्नावशेषो को खोदने से तो मिलते ही है, यदि आज भी काशी को ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यही बात दिखाई पडेगी।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोई स्थान थोडे काल तक बसा रहा फिर उजड गया। वहाँ प्रकृति उसके ध्वस्त होने और भूमि मे दबने मे सहायक होती है। कभी-कभी प्राकृतिक आपदाओ से भी नगर ध्वस्त हो जाते हैं। भूकम्प के कारण नगर ध्वस्त होते और लोगो को उसके नीचे दब मरते हमने अपनी आँखो अभी पिछले विहार भूकम्प के समय देखा है। ऐसी घटनाएं हमारे देश मे अनेक बार हुई हैं। मत्स्य पुराण मे लिखा है कि 'सौवीर आभीरोंके स्त्रीपुरुष के पापाचार के कारण देवताओ ने शाप दे दिया जिससे नगर भूगर्भ मे चला गया।' स्पष्टत यह भूकम्प से नष्ट हुए नगर की ओर सकेत है। इसी तरह द्वारका के जलमग्न हो जाने के साक्षी महाभारत और पुराण है। भूकम्प के कारण

ही पिछली शताब्दी में पूर्वी किनारे के सौ मील की पट्टी जलमग्न हो गयी। भूकम्प के कारण ही सुन्दरवन दलदल वन गया है।

कभी-कभी ज्वालामुखी के प्रज्वलन से भी नगर भूमिस्थ हो जाते हैं पर ऐसी घटनाएं इतिहास में बहुत कम हुई हैं। इस तरह ध्वस्त नगर के अवशेष के रूप में अब तक पाम्प्याई (इटली) ही एक मात्र उदाहरण है। वहाँ के अद्वितीय रूप में सुरक्षित मकान, अब तक खड़े हुए दुतल्ले भवन उनके भित्तिचित्र तथा आपत्ति के समय नगरवासियों द्वारा छोड़े गये सामान को आज भी अविकल रूप में सुरक्षित देख कर लोग आश्चर्य-चकित रह जाते हैं। बात यह है कि ऐसी आकस्मिक आपत्तियों के समय लोग अपनी चीजें लेकर भाग नहीं पाते या कम भाग पाते हैं।

कभी-कभी शत्रु द्वारा आग लगाये जाने से भी नगर ध्वस्त हो जाते हैं। ऐसे स्थानों के उदाहरण में तक्षशिला का नाम लिया जा सकता है। हूणों के आक्रमण के समय वह उजड़ गया तब से वह एक दम वीरान ही रहा। शत्रु के आक्रमण के समय भी नागरिक अपनी सारी गृहस्थी उठा कर भागने में असमर्थ होते हैं, और आक्रमणकारी लोग भी वही चीजें लूट कर ले जाते हैं जो उनकी दृष्टि में कीमती होती हैं। आग भी सभी चीजों को जला नहीं पाती। नितान्त बची हुई चीजें ऊपर की सतह से गिरी राख, ईंट और मिट्टी के नीचे दब जाती हैं और वहाँ तब तक पड़ी रहती हैं जब तक लोग उन्हें खोद निकालने की चेष्टा नहीं करते। इस प्रकार अग्नि द्वारा नष्ट स्थान भी प्रायः पुरातत्व की दृष्टि से सुरक्षित समझे जाते हैं।

नगरों के उत्थान और पतन की गति कहीं तीव्र और कहीं अत्यन्त मन्द होती है। जहाँ पतन की गति तीव्र होती है वहाँ पुरातात्विक महत्त्व की चीजें अधिक मिलती हैं। जब कभी ध्वंसावस्था में महत्त्व की चीजें कम मिलती हैं तो समझा जाता है कि पतन की गति मन्द रही होगी अथवा ऐसा अनुमान होता है कि लोग पुराने भवनों की सामग्री नये भवन बनाने

के लिए दूसरे स्थानो पर उठा ले गये होगे । बहुत दिनो की बात नही है जब सारनाथके ध्वसावशेषो के बहुत बडे भाग का उपयोग बनारस के डफरिन ब्रिज (राजघाट का पुल), वरुणा का पुल (जो १९४८ की बाढ मे टह गया) और क्वीस कालेज के भवन के बनाने में किया गया था। इसी प्रकार हडप्पा की ईंटो का उपयोग ठेकेदारो ने नार्थ वेस्टर्न रेलवे की अनेक इमारतो के बनाने मे किया है । जहाँ ऐसी बाते होती है वहाँ ऊपरी भाग मे महत्त्व की चीजे बहुत कम मिलती है और जो मिलती है उनमे इतिहास का पूर्ण चित्र बना सकना सम्भव नही होता ।

प्राचीन नगर या भवन किसी न किसी प्रकार भूमिस्थ हो जाते है यह मान लेने पर लोगो के मन मे दूसरी स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि पुरातत्वविदो को उनका पता कैसे लगता है ।

किसी नगर या भवन के भूमिस्थ हो जाने का सदैव यह अर्थ नही होता कि वह भूगर्भ मे एक दम लुप्त हो ही जाय । प्राय भूमि के बाह्य स्तर पर कोई न कोई चिह्न ऐसे रहते ही है जिनसे पुरातत्वविद् को उसके प्राचीनता का सकेत मिल जाता है । हमारे तथा हमारे पडोसी पश्चिमी देशो मे, यथा—मिस्र आदि मे भूमि से ऊँचे उठे टीलो के समूह पाये जाते है जो साधारणतया किसी न किसी प्राचीन नगर अथवा स्थान की ध्वस्त अवस्था को व्यक्त करते है । हमारे देश मे साधारणतया ऐसे स्थलो के सम्बन्ध मे, जो कभी महत्त्वपूर्ण स्थल रहे है, आसपास के निवासियो मे कुछ न कुछ जनश्रुति प्रचलित होती है । इनमे यद्यपि ऐतिहासिक तथ्य की मात्रा अधिक नही होती फिर भी उनसे उस स्थान की प्राचीनता तथा महत्ता का कुछ न कुछ आभास मिलता ही है । अत ये जनश्रुतियाँ किंवदतियाँ अथवा प्रवाद पुरातात्विक महत्त्व के स्थानो के निर्णय मे बहुत सहायक होते है । बलिया जिले के रसड़ा तहसील मे खैराडिह नामक एक गॉव है । उस ओर पुरातत्व विभाग का ध्यान कम गया है । उसके सम्बन्ध मे वहाँ के लोगो मे प्रवाद है कि वह भार्गव मुनि का स्थान है । यद्यपि

स्थान की प्राचीनता और महत्ता आँकी जाती है। पुरातत्वविद् किसी स्थान के महत्त्व के आँकने मे इन सब बातो का सहारा लेता तो है पर उस पर वह एक दम निर्भर नही करता क्योकि उस पर निर्भर करना अकसर ख़तरे से ख़ाली नही रहता। अत. इन बातो को ध्यान मे रखते हुए वह स्थानीय प्रमाण भी ढूँढने की चेष्टा करता है।

कभी-कभी तो ऐसा होता है कि इन टीलो के ऊपर ही भवन का थोडा बहुत भाग बाहर निकला रहता है। उससे पुरातत्वविद् को उस स्थान की प्राचीनता निश्चय करने मे सहायता मिलती है। सारनाथ का महत्त्व धमेख स्तूप के ऊपरी भाग को देख कर ही आँका गया था जो टीले के ऊपर निकला हुआ था। पर ऐसा बहुत कम स्थानो मे सम्भव होता है।

ऊपर यदि इस प्रकार वास्तु का कोई चिह्न नही है तो भी टीले के भीतर यदि ईंट का कोई वास्तु है तो वह मिट्टी का रग देख कर मालूम हो जाता है। साधारणत· वहाँ की मिट्टी का रग लाल हो जाया करता है। जो स्थान किसी समय निवास स्थल रहा हो, वहाँ मिट्टी के बर्तन आदि अवश्य पड़े रहते है, जो हल चलाने के समय निकल-निकल कर अपने प्राचीन अस्तित्व का परिचय देते है। आजमगढ जिले मे घोसी नामक स्थान पर विस्तृत क्षेत्र मे फैला हुआ एक बहुत ऊँचा टीला है। जन-प्रवाद के अनुसार वह राजा नहुष का कोट कहा जाता है। उस टीले पर किसान लोग खेती करते है। वहाँ हल जोतते समय अकसर मृण्मूर्तियाँ निकला करती है। इन मृण्मूर्तियो के देखने से पता चलता है कि वह कुषाण काल मे समृद्धिशाली स्थान रहा होगा। इस प्रकार देश भर मे अनेक स्थानो पर प्राचीनता के संकेत प्राप्त हुए है।

जिन स्थानो पर पत्थर की इमारते बनी रही होती है वहाँ पत्थर के नकाशीदार टुकडे टीले की भीतर की वास्तु का सकेत देते है। इनके अतिरिक्त बरसात के बाद टीले की मिट्टी बह जाने पर टीकरे, मनके,

मुहरें, मुद्राएं आदि ऊपरी सतह में पायी जाती है जिनसे पुरातात्विक महत्त्व के टीला का पता लगता है। अधिकाश स्थानों पर मिट्टी के टीकर आदि निरर्थक वस्तुएँ ही पुरातात्विक खोज में सहायक होती हैं।

जहाँ ऊपरी तह में इस प्रकार का कोई चिह्न नही मिलता, वहाँ भी पुरातत्वविद् की आँखें कोई न कोई संकेत पा ही जाती है। भूगर्भ में छिपी पक्की दीवारों के ऊपर की मिट्टी में घास अथवा शस्य आस-पास के घास अथवा शस्य की अपेक्षा कम बलवती होगी। इससे भी पुरातत्व विद को मनोवांछित संकेत मिल जाता है। कभी-कभी इस प्रकार की भूमि का ज्ञान पृथिवी के धरातल से नही हो पाता। ऐसी अवस्था में आजकल पुरातत्वविद वायुयान की सहायता लेकर आकाश से निरीक्षण करते हैं और उस स्थान का चित्र उतारते हैं। यह प्रणाली देखने में विचित्र सी जान पड़ती है पर उससे बहुत कुछ अंशों में पृथिवी के भीतर का रहस्य प्रकट हो जाता है और पुरातत्वविद समय की बचत के साथ-साथ खुदाई के उपयुक्त स्थान का निश्चय कर लेता है। अभी कुछ ही दिनों पहले इस पद्धति से केस्टर नामक एक प्राचीन रोमन ग्राम का पूरा पूरा मानचित्र तैयार किया गया था। आकाश से लिये गये चित्रों के ऐग पर ही अज्ञात केस्टर की स्थिति का पता लगा और वहाँ के भवनों की खुदाई की गयी। इस प्रकार मीलों तक रोमन सड़कों और सीरिया के सपाट रेगिस्तानों में दबे कितने ही पड़ावों की भी जानकारी प्राप्त की जा सकी। उडहेज नामक स्थान के आकाशी चित्रों ने तो पुरातत्व विज्ञान में एक महान आश्चर्य उत्पन्न कर दिया है। वहाँ सपाट किन्तु जुते हुए खेतों के कुछ चित्र लिये गये। चित्र लिये जाने पर चित्रों में बिन्दुओं के अनेक वर्तुलित वृत्त दिखाई पड़े, जो हजारों वर्ष पूर्व गड़े किये गये लकड़ी के खम्भों के खाली छेद थे। बात यह है कि जिस भूमि के नीचे वास्तु आदि दबे होते हैं, उनमें बरसने वाले पानी के सोखने की शक्ति अपने अगल-बगल की भूमि से, जहाँ कोई वास्तु नहीं होता, एकदम भिन्न

होती है। इस कारण ऊपर पडी हुई मिट्टी की नमी मे भिन्नता होती है। यह भिन्नता जमीन से देखने पर पता नही चलता, पर आकाश से देखने मे अन्तर स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाता है। इस वैज्ञानिक तथ्य के सहारे विना खुदाई किये ही भूमि मे दवे वास्तु की रूपरेखा का अनुमान किया जा सकता है। छोटे क्षेत्रो मे वायुयान का उपयोग न कर पुरातत्वविदो ने चित्र लेने मे गुव्वारो का उपयोग किया है। गुव्वारे मे केमरा लटका कर डोरे के सहारे गुव्वारे को ऊपर भेज देते है फिर विजली के तार से केमरे का वटन दवा कर चित्र ले लेते है।

कभी-कभी अकस्मात ही प्राचीन स्थानो का पता लग जाता है। अभी कुछ ही वर्ष पहले काशी रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्मो के विस्तार करने की आवश्यकता हुई, तव ठेकेदारो ने गगा के किनारे खडे कुछ टीलो से मिट्टी लाने की व्यवस्था की। मिट्टी के लिए जो खुदाई की गयी तो वहाँ पुरातत्व की दृष्टि से वडे महत्व का स्थान प्रकट हुआ और वाद मे वहाँ विस्तृत ढग पर पुरातत्व विभाग ने खुदाई करायी और गुप्तकालीन काशी के इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पडा। इसी प्रकार वगाल के एक स्थान पर सेना विभाग की ओर से खुदाई हो रही थी तो वहुत सी पुरातात्विक महत्व की वाते सामने आयी।

पुरातत्व की दृष्टि मे महत्व के स्थान इस प्रकार जाने जाते है। इन्हे हम प्राचीन स्थान की खोज के कुछ साधन अवश्य कह सकते है पर सच वात तो यह है कि पुरातत्वविद् का कार्य अन्वीक्षण पर ही अधिक निर्भर करता है। उसको छोटी वडी प्रत्येक वस्तु पर ध्यान रखना पडता है। एक वार सर लियोनर्ड ऊले उत्तरी सीरिया के कर्कमिश नामक स्थान मे अन्वेषण कार्य कर रहे थे। उस समय तक वहाँ उन्हे कोई समाधि प्राप्त नही हुई थी। एक दिन अचानक आप अपने तुर्की सहकर्मी फाउन्द वेग से कह वैठे कि आज मै एक समाधिस्थल खोदने जा रहा हूँ। उसे यह सुन कर आश्चर्य हुआ। वे उसे उस प्राचीन नगर के दुर्ग के वाहर

नदी के किनारे एक जुते हुए खेत के पास ले गये, जो उस समय परती पड़ा हुआ था। वहाँ बिखरे हुए मिट्टी के टीकरों को दिखा कर बोले कि ये समाधिभूमि को व्यक्त करते हैं और लगे पत्थरों को जमा कर अलग-अलग समाधियों को चिह्नित करते हैं। फाउदरेंग अविश्वासपूर्वक हँस पड़े और उनकी बातों का मजाक उड़ाने लगे। अन्तत दोनों में बाजी लगी कि जहाँ इन्होंने पत्थर रखे हैं वहीं समाधियाँ हैं। खुदाई होने पर बेचारे फाउदरेंग बाजी हार गये। वे एक मास तक समझ ही न सके कि बात क्या थी जिससे ऊले ने ताड़ लिया कि वहाँ समाधियाँ हैं। बात कुछ नहीं थी, यह ऊले की कल्पना मात्र थी। नदी का किनारा बहुत ही कड़े किस्म का पथरीला था, उसके ऊपर पड़ी मिट्टी की तह बहुत ही छिछली थी और अरबी हल से जुते हुए होने के कारण मिट्टी की खुदाई केवल तीन इंच की गहराई तक हुई थी। परती खेत होने के कारण उस पर जो कुछ जमा था घना न था और उसकी जड़ें भी गहराई तक न गयी थीं किन्तु बीच बीच में कुछ ऐसी घास जमी हुई थी जिनकी जड़ काफी गहरी गयी हुई थीं। यदि कोई उसे ध्यानपूर्वक देखता तो उसे यह स्पष्ट जान पड़ता कि कहीं-कहीं तो घास का केवल ही एक पौधा है पर अधिकांश चार-चार पाँच-पाँच पौधों के गुच्छों के रूप में घास है और इस गुच्छों का विस्तार कहीं भी छः फुट से अधिक नहीं है। इस अवस्था को देख कर कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यह कल्पना कर सकता था कि किसी समय वहाँ की पथरीली भूमि गहराई तक तोड़ी गयी रही होगी। टूटी हुई भूमि में ही इस प्रकार के घास का जमना सम्भव था। घास के प्रत्येक गुच्छे के विस्तार की लम्बाई छः फुट होने से यह कल्पना की जा सकती है कि उसकी खुदाई समाधि के लिए की गयी होगी। ऊले का कथन बस इसी अनुमान पर आश्रित था। उनके इस अनुमान को बिखरे हुए टीकरों से बल मिला। अनुमान होता कि सम्भव है ये टीकरे कब्रों के अन्दर समाधियों के चिह्न हों अथवा समाधि-पूजा के पात्रों के टुकड़े हों। इसी कल्पना के सहारे उड़ान

अपनी बात कही जो सही निकली और वे बाजी मार ले गये।

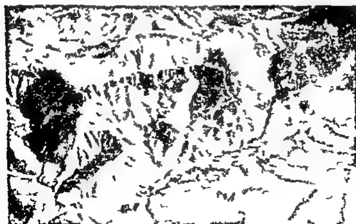
कभी-कभी पुरातत्वविद् को कोरे अनुमान का ही सहारा लेना पडता है। तूताखामन की समाधि का पता इसी प्रकार लगा। थेब की घाटी मे मिस्र के शासको के १८वे वश के दो को छोड कर अन्य सभी फिराऊनो की समाधियो का पता लग चुका था। वहाँ उस वश की समाधिभूमि थी अत यह आशा करना स्वाभाविक था कि अन्य दो की समाधियाँ भी वही होगी। इसी विश्वास के सहारे लार्ड करनारवन ने उस घाटी की एक सिरे से खुदाई आरम्भ की और अन्ततोगत्वा चट्टानो के काटने से निकले हजारो टन पत्थरो से गह्वरो के भरने के बाद, उन्हे अपनी खोज म सफलता मिली।

इस प्रकार किसी भी पुरातत्वविद् की सफलता बहुत कुछ युक्तिपूर्ण अनुमानो के सहारे धैर्यपूर्वक कार्य करने पर ही निर्भर करती है।





उर की समाधि भूमि में विनष्ट वृषभ मुखहार्प जिसे पुरातत्वविदों
पेरिस प्लास्टर के सहारे संरक्षित किया है। (पृष्ठ ६६)
[फिलाडेल्फिया विश्वविद्यालय संग्रहालय से]



थर का घाटी जहाँ तूतन खमन की समाधि थी (पृष्ठ ३०)



२४००—२६०० ई० पू०
२६००—३००० ई० पू०
३०००—३४०० ई० पू०
३४००—३८०० ई० पू०
३८००—४००० ई० पू०

विभिन्न काल के स्तरों के ज्ञान के लिए टीले के एक भाग
की सीढ़ीनुमा खुदाई (पृष्ठ ४०)

द्वितीय अध्याय

खुदाई

पिछले अध्याय में हम कह चुके है कि पुरातत्वविद् का कार्य भाग इतिहास की खोज करना और उसकी दिशागति को व्यक्त करना है। इस कार्य का व्यवहारिक रूप कुछ पेचीदा सा है। पुरातत्वविद को दो ऐसी बातो को सामने रखना पडता है जिनका सम्मिलित स्वार्थ होने पर भी लक्ष्य एक नही कहा जा सकता। एक ओर तो उसे अपने अन्वेषण का वैज्ञानिक आलेखन करना पडता है और दूसरी ओर अन्वेषण में प्राप्त वस्तुओ का सरक्षण।

पहले हम यह भी कह चुके है कि ऐतिहासिक ज्ञान, प्राप्त वस्तु की अपेक्षा उसके प्राप्त होने की अवस्था एव परिस्थिति से ही अधिक प्राप्त होता है। इस दृष्टि से अच्छी से अच्छी और अनोखी से अनोखी वस्तु का महत्त्व उसी समय समाप्त हो जाता है जब वह अपने सारे ऐतिहासिक महत्त्व का परिचय करा चुकता है। यदि किसी कारण कोई सग्रहालय नष्ट हो जाय तो कला की दृष्टि से महान् क्षति भले ही कही जाय, पर पुरातत्व की दृष्टि से वह हानि नगण्य ही कही जायगी क्योंकि उस सग्रहालय में सग्रहीत और सरक्षित वस्तुओ के ऐतिहासिक महत्त्व का आलेखन हो चुका होगा। किन्तु इस कथन का तात्पर्य यह कदापि नही है कि आलेखन के पश्चात् खुदाई में मिली वस्तुए निरर्थक सी हो जाती है। सग्रह की दृष्टि से उनका अपना एक विशेष महत्त्व है। ज्ञान की वृद्धि में प्रत्यक्ष साधन अधिक सहायक होते है। इस दृष्टि से सग्रहालय में सरक्षित वस्तुओ का महत्त्व होता है।

पुरातत्वविद् को ये दोनो काम एक साथ करना पड़ता है। एक ओर तो उसे अन्वेषण के प्रति सतर्क रहना पड़ता है, दूसरी ओर वह संरक्षण की भी उपेक्षा नही कर सकता। इस प्रकार पुरातत्वविद् का काम बड़े धैर्य और परिश्रम का है। उसके कार्य की प्रगति अत्यन्त मन्द होती है और उसमें समय बहुत लगता है।

पुरातत्वान्वेषण मे खुदाई ही एक मात्र प्रधान कार्य नहीं है। यदि खुदाई मे किसी प्रकार का अभिलेख प्राप्त हो तो उसके पढने का भी ज्ञान आवश्यक है ताकि तत्काल पढ कर उसका अभिप्राय मालूम हो सके और जो बात मालूम हो उसका लाभ खुदाई मे उठाया जा सके। अन्वेषण मे स्थल के माप की भी आवश्कता होती है। खुदाई मे मिले भवनो का नकशा तैयार करना होता है। ये सारे कार्य कोई भी पुरातत्वविद् स्वय कर तो सकता है किन्तु उसके कार्यों की दिशाए इतनी बिखरी हुई होती है कि वह उन्हे अकेला पूरा नही कर सकता।

किसी पुरातात्विक महत्त्व के स्थान की खुदाई करने से पूर्व सदैव इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि पुरातात्विक खुदाई एक प्रकार का नष्टीकरण है। पुरातत्वविद् को किसी स्तर के भवन की खुदाई करने के निमित्त ऊपर स्थित दो या तीन परवर्ती वास्तु-चिह्नो को हटाना पड सकता है, तभी मनोच्छित स्तर के भित्ति-अवशेष देखे जा सकते है। ऐसी अवस्था मे यदि हवा के झोके से बालू या मिट्टी उस साफ किये हुए स्थान को ढक ले, तो दुबारा उसकी सफाई तो की जा सकती है पर वे सारे पुरातात्विक प्रमाण जो फर्श पर वस्तुओ की अवस्था, लकड़ी के धूलि-चिह्नो अथवा बिखरे ईंटो के रूप मे प्राप्त थे, नष्ट होकर सदैव के लिए अलभ्य हो जाते है। इसी प्रकार जब किसी समाधि की खुदाई होती है तो वहाँ जो कुछ भी शेष रहता है, वह एक गढा मात्र होता है और उसके भीतर की वस्तुए सग्रह मात्र होती है। यदि पुरातत्वविद् उसकी प्रत्येक वस्तु की अवस्था का यथाक्रम विवरण न तैयार कर सके तो उसका

महत्त्व सदा के लिए लुप्त हो जायेगा । ऐसी अवस्था में यदि किसी खुदाई का विवरण वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण नहीं है तो उसका अर्थ पुरातत्वविज्ञान का घाटा देना होगा । उससे अच्छा तो यह है कि वह खोदा ही न जाय । इसलिए इस बड़ी जिम्मेदारी को देखते हुए खुदाई अथवा अन्वेषण आरम्भ करने से पूर्व यह देख लेना आवश्यक है कि अन्वेषण के सफल संचालन के लिए पर्याप्त साधन हैं या नहीं ।

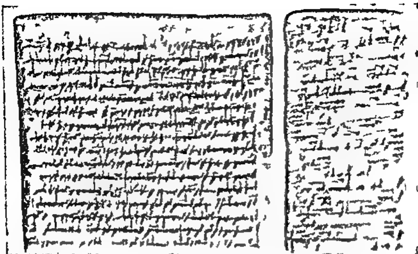
छोटे मोटे अन्वेषण-स्थलों की खुदाई का कार्य एक आध दर्जन व्यक्तियों से किया जा सकता है । यदि उन आदमियों में से कुछ ऐसे व्यक्ति हों जो पुरातत्व में रुचि रखते हों तो वे कोरे मजदूरों की अपेक्षा अधिक उपयोगी हो सकते हैं । ऐसे लोगों की देख भाल की कम आवश्यकता होती है । ऐसी अवस्था में एक ही व्यक्ति अन्वेषण की व्यवस्था एवं संचालन कर सकता है, किन्तु विशाल क्षेत्र के अन्वेषण में यह बात लागू नहीं की जा सकती । वहां तो मजदूरों के विशाल समूह की आवश्यकता होती है । समय धन और साधन का ध्यान रखते हुए श्रमिकों का अधिक से अधिक उपयोग करना पुरातत्वान्वेषण के लिए परमावश्यक है । श्रमिकों की संख्या निश्चित नहीं की जा सकती किन्तु इतना तो है ही कि अन्वेषण स्थल के विस्तार जितने व्यक्तियों का नियन्त्रण सुगमता से कर सके उतने ही मजदूरों का उपयोग वांछनीय होता है ।

खुदाई का कार्य आरम्भ होने पर मजदूरों को छोटे-छोटे समूहों में बांट दिया जाता है । प्रत्येक समूह में एक खनक—मिट्टी खोदने वाला, एक मिट्टी उठाने वाला और तीन चार मिट्टी ढोने वाले होते हैं । इनका समूह का चुनाव उनकी योग्यता अनुभव और बुद्धि के अनुसार किया जाता है । पहले किसी समूह में काम कर चुकने वाला व्यक्ति इस कार्य के लिए विशेष उपयोगी होता है । वही अपने समूह का नेता होता है । इस खनक का काम भूमि खोदना होता है इसलिए वहां मिट्टी न निकले, वस्तु प्राप्त करना है इस प्रकार उसका कार्य गम्भीर और उत्तरदायित्वपूर्ण

होता है। उसको बराबर यह ध्यान रखना पड़ता है कि जो भी वस्तु मिट्टी में से निकले वह टूटने-फूटने न पाये और उसे किसी प्रकार की हानि न पहुँचे। दूसरे व्यक्ति का काम मिट्टी को टोकरी में उठा कर ढोने वाले को देना होता है। इसलिए उसका यह भी काम है कि वह टोकरी में मिट्टी भरने से पहले यह देख ले कि उसमें कोई चीज खनक की दृष्टि से बच कर तो नहीं चली आयी है। अगर चली आयी है तो उसका संरक्षण उसका कर्तव्य होता है। शेष मिट्टी ढोने वालों का काम तो यन्त्रवत् है। उन्हें मिट्टी एक स्थान से हटा कर दूसरे स्थान पर फेंकने से मतलब रहता है। इसलिए वे चतुर हों या मूर्ख इससे प्रयोजन नहीं। केवल परिश्रमी होना आवश्यक होता है।

आगे बढ़ने से पहले यह बता देना आवश्यक है कि पुरातत्व की दृष्टि से खुदाई वर्ष के भीतर जब चाहे तब नहीं की जा सकती। जलवायु के अनुसार मौसम अनुकूल होने पर ही खुदाई निर्भर करती है। हमारे देश में सामान्यत बरसात के बाद खुदाई का कार्य आरम्भ किया जाता है और गर्मी शुरू होने के पूर्व ही समाप्त कर दिया जाता है। इस काल में बरसात समाप्त होगया होता है जिसके कारण ऊपर के सतह से काफी मिट्टी बह गयी होती है और छोटी-मोटी चीजे, जिनसे पुरातात्विक महत्व का संकेत मिलता है, ऊपर आगयी होती है। दूसरे मिट्टी नरम होगयी रहती है जिससे खुदाई में आसानी होती है और श्रम कम लगता है। इस समय धूप भी कड़ी नहीं होती जिसके कारण खुदाई का काम सारे दिन किया जा सकता है।

खुदाई के लिए सारी व्यवस्था कर लेने के बाद अन्वेषक का पहला काम, यदि उस स्थान पर पहले कोई अन्वेषण कार्य नहीं हुआ है अथवा उस स्थान के सम्बन्ध में पुरातत्व सम्बन्धी कोई बात पहले से मालूम नहीं है तो, उस भूमि के धरातल का अध्ययन होता है जिसकी कि खुदाई करनी है। यदि अन्वेषणीय स्थान बहुत विस्तृत हुआ तो पुरातत्वविद् किसी



मेसोपोटामिया से प्राप्त मिट्टी का एक लिखित फलक (पृष्ठ १६)
[शिकागो विश्वविद्यालय की प्राच्यशाला से]

खुदाई में प्राप्त मोहेँ जो नगर का एक भाग (पृष्ठ ३५)
[भारतीय पुरातत्व विभाग से]

ताम्रयुग के कुछ शस्त्रास्त्र (पृष्ट ५४)
[भारतीय पुरातत्व विभाग से]



परखम से प्राप्त मूर्ति (पृष्ट ६६)
[भारतीय पुरातत्व विभाग से]

एक भाग को अपने काय का केन्द्र निश्चित करता ह। इस निवाचन के लिए वह किसी न किसी महत्त्वपूण सकेत का सहारा लेता ह। इन सकेतो की कुछ चर्चा हम अन्यत्र कर चुके ह। उन्ही या उसी प्रकार के अन्य सकेतो के आधार पर वह अपना काय-केन्द्र निश्चित करता ह।

पुरातत्वविद किसी स्थान के केन्द्र का निर्वाचन किसी सकेत के आधार पर करे अथवा कोरे अनुमान के आधार पर उसके काय आरम्भ करने की प्रणाली एक सी होती ह। वह अपना काय खाइ खोदन के रूप म आरम्भ करता ह। वह पहले टीले के धरातल पर लम्बाई अथवा चौडाई म कोइ स्थान निश्चित करता ह और उसी स्थान की सीध में वह खुदाइ आरम्भ करता ह। वह अपने काय क्षेत्र को किसी निश्चित माप के वर्गों म बाट देता ह और प्रत्येक वग में मजदूरो का एक दल खुदाई का काम आरम्भ करता ह। थोडा खुदाई के बाद ही कुछ गहराई पर दीवारो के टुकड दिखाई देने लगत ह। अब पुरातात्विद् के सामन यह निश्चय करन का प्रश्न उपस्थित होता ह कि व असम्बद्ध दीवार एक ही काल की ह अथवा विभिन्न काल की। यदि दीवारें विभिन्न काल की ठहरी जसा कि सामान्यत अधिक ऊँचे एव ढालू टीलो म पाया जाता ह तो पुरातत्वविद् अपना ध्यान वास्तु के नवीनतम स्तर पर केन्द्रित कर खुदाई सीमित कर देता ह। एसा न करन से एक साथ दो स्तरो पर दो कालो की पायी जान वाली चीजो का अलग अलग वर्गीकरण करने की समस्या जटिल हो जाती ह और यदि किसी वस्तु का सम्बन्ध ठीक-ठीक स्तर के अनुसार आंका न जा सका तो काल निणय के प्रमाणो का कोई मूल्य नही रह जाता। काल निणय पुरातत्व का एक मुख्य उद्देश्य होता ह इसलिए ज्यो ही भवनो के अवशष मिलने लगत ह गहराई की ओर खुदाइ रोक कर दीवारो के सहारे दाइ-बाइ ओर खुदाई की जाने लगती ह और दीवारो के सहारे आग की ओर खुदाई की जाती ह। 'ज्ञात से अज्ञात की ओर' के सिद्धान्त का अनुसरण काम होता ह।

वालुकामय प्रदेशो, यथा—मिस्र आदि मे खुदाई का काम अधिक सुगम है। बालू के नीचे छिपे मिट्टी ईंट अथवा पत्थर के बने वास्तु के भग्नावशेषो को बालू के बीच मे सरलता से अलग किया जा सकता है। किन्तु चिकनी मिट्टी मे दबे मिट्टी और ईंटो के बने भवनो को खोद निकालने मे तनिक कठिनाई होती है। ये भवन अपने ही गिरे मलबो के नीचे दबे होते है, खडी दीवारो और गिरी ईंटो मे अन्तर करने के लिए विशेष चातुरी की आवश्यकता होती है। एक बार मिस्र के एक पुरातत्वविद् एक ऐसे ही भग्नावशेष की खुदाई कर रहे थे। जीवन मे पहली बार उन्होने इस ढग की खुदाई अपने हाथ मे ली थी। ईंटो की एक पूरी दीवार को जो लगभग छ फुट ऊँची रही होगी खुदवा डाला, परिणाम यह हुआ कि पत्थर के चौखटो के सिवा उनके हाथ कुछ भी नही लगा।

कभी-कभी पत्थर के बने भवनो के अवशेषो का भी पता जल्दी नही लगता। यदि भवन का निर्माण पत्थर के बेडौल टुकडो और मिट्टी के गारे से हुआ हो, तो मिट्टी के वह और टुकडो के खिसक जाने से बने ढेर मे दीवारो का पता लगाना सुगम नही है। यदि दीवार का बाहरी भाग पत्थर के सुडौल टुकड़ो का भी रहा हो तो भी ऐसा हो सकता है कि पीछे आने वाले लोग उसे नये भवनो के बनाने के लिए उठा ले गये हो। ऐसी अवस्था मे वास्तु के अवशेष का रूप शायद ही वास्तु के अनुरूप रह जाय।

सबसे अधिक योग्यता की आवश्यकता उन दीवारो की खुदाई के लिए होती है जो एक दम मिट्टी के बने होते है, और मलबे के नीचे दब कर भूमि से अभिन्न बन जाते है। ऐसी अवस्था मे पुरातत्वविद् को अपने विवेक से आँखो के सहारे काम करना पडता है। साधारणतया दीवार वाली मिट्टी मे घास भूसा अथवा ईंटो और ठीकरो के नन्हें-नन्हे टुकड़े अधिक होते है, जिसके कारण दीवार वाली मिट्टी के रग मे हल्का सा परिवर्तन हो जाता है। इससे दीवार की मिट्टी और भूमि की मिट्टी मे अन्तर करना अभ्यस्त आँखो के लिए कठिन नही होता। ऊपर की मिट्टी

हटाये जाने के बाद नीचे की मिट्टी में जो नमी रहती है वह जब सूख जाती है तो उस समय भूमि और दीवार की मिट्टी के रंग में स्पष्ट अन्तर मालूम होने लगता है। फिर भी ऐसी भूल होना असम्भव नहीं होता कि दीवार खोद डाली जाय अथवा दीवार के भ्रम में एक नयी दीवार खड़ी कर दी जाय।

खुदाई में दीवार मिलने के पश्चात् दीवार के सहारे खुदाई करता हुआ प्रत्येक खनक समूह एक एक दीवार के बगल में जगह बनाता आगे बढ़ता है और उनके पीछे दूसरा दल गहरी खुदाई कर फर्श का पता लगाता है और बाकी लोग मलबे की सफाई की व्यवस्था करते हैं। जब फर्श का, चाहे वह मिट्टी का हो या ईंट का अथवा किसी अन्य चीज़ का, पता लग जाता है तो गहराई की खुदाई का काम तत्काल बन्द कर दिया जाता है। दरवाजों के दोहनों के सहारे फर्श का अनुमान सरलता से हो जाता है। यदि किसी प्रकार फर्श का स्पष्ट पता नहीं लग सका, तो भी उस गहराई पर खुदाई बन्द कर दी जाती है जहाँ पर फर्श होने की सम्भावना हो सकती है, अर्थात् नींव से कुछ ऊपर। ऐसा करने का कारण स्पष्ट है। फर्श की सतह पर मिलने वाली चीज़ें निश्चित रूप से भवन के समकालीन होती हैं अथवा उसके बाद की और फर्श की सतह से नीचे मिलने वाली चीज़ें उसके निर्माण से पूर्व की। भवन निर्माण के लिए ज़मीन समतल करते समय ये चीज़ें सुरक्षित रूप से दब गयी रहती हैं। अब यह पुरातत्त्वविद् का काम है कि वह पूर्ववर्ती और परवर्ती वस्तुओं का [illegible] महत्त्व पर विचार करे। इसलिए फर्श सतह के ऊपरी [illegible] हटाया जाता है, फिर उसका [illegible] किया जाता है और उस सतह पर मिलने वाली सारी चीज़ों का [illegible] किया जाता है। ऐसा करने में [illegible] जाता है। तब उस स्तर के सम्बन्ध में [illegible] मालूम हो जाती है [illegible] की जाती है।

ये सारी बाते लिखने या पढने मे जितनी सुगम जान पडती है, वस्तुत व्यवहारिक रूप मे उतनी सुगम नही है। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक भवन नष्ट होकर दब गया किन्तु उसकी दीवारो का कुछ अश भूमि के ऊपर अपने सुरक्षित रूप मे खडा रहा। उस भूमि पर नया भवन बनाने वाले ने उसे अपने भवन मे सम्मिलित कर लिया और उस अवशिष्ट अश के ऊपर से ही अपनी दीवार खडी की। इस प्रकार किसी भवन की एक ही दीवार दो काल की हो सकती है। सारनाथ मे जब गुप्त-कालीन विहार न० २ की खुदाई की गयी तो उसकी नीव मे एक दम भिन्न अलकरण के भवन का अवशेष मिला। इसी की नीव पर इस विहार का निर्माण हुआ था।

यह भी हो सकता है कि एक भवन अपरिवर्तित रूप मे खडा रहे और उसके आस-पास के भवन दो-तीन बार बन और बिगड जायँ। ऐसी अवस्था मे पहले मकान मे मिली हुई वस्तुए पडोस के भवन के दो-तीन स्तरो पर मिल सकती है। अथवा यह भी हो सकता है कि एक ही काल के दो भवन किसी भूतकालीन घटना के कारण दो भिन्न स्तरो पर बने हो। इस प्रकार की अनेक परिस्थितियाँ काल-निर्णय आदि की समस्याओ को जटिल बना दिया करती है। ऐसी समस्याओ को सुलझाने मे ही पुरातत्वविद् की कलाकुशलता प्रकट होती है। इसमे उसे तब तक सफलता नही मिलती जब तक उसकी कार्यव्यवस्था सुव्यवस्थित न हो।

प्रत्येक स्तर को एक-एक करके खोदने के सामान्य सिद्धान्त के एक-आध अपवाद भी है। स्तर-क्रम से खुदाई की गति अत्यन्त मन्द होती है और उसमे समय अधिक लगता है और व्यय भी काफी होता है। अत जब खुदाई का उद्देश्य उस स्थान की सभ्यता और सामाजिक जीवन का ज्ञान प्राप्त करना न होकर केवल कुछ सूचनाए प्राप्त करना मात्र होता है तो उस अवस्था मे सामान्य सिद्धान्त के विरुद्ध भी काम किया जाता है। अगर यही जानना अभीष्ट हो कि टीले के भीतर कितने काल के

खनक को टाल पर एक निश्चित दूरी तक खोदने का काम दिया और प्रत्येक खनक ने अपने हिस्से की खुदाई सीढ़ीनुमा की। इस प्रकार खनकों ने जो खुदाई की उससे प्राप्त बर्तन एवं अन्य वस्तुये उन सीढ़ियों के अनुसार अलग-अलग रखी गयी और उनका आलेखन किया गया। यद्यपि खनकों के कार्यों का विभाजन किसी निश्चित सिद्धान्त पर नहीं हुआ था और न उसमें भूमि के स्तरों का ही कोई वैज्ञानिक ध्यान रखा गया था तथापि सकलन और आलेखन समाप्त हो जाने पर जब तुलनात्मक अध्ययन किया गया तो परिणाम विज्ञान की दृष्टि से खरा उतरा।

अब तक के पुरातात्विक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि ऊँचाई के अन्तर के साथ-साथ विभिन्न स्तरों पर मिलने वाले प्राचीन काल के बर्तनों की रूपरेखा में अन्तर पाया जाता है। सबसे ऊपर के पाँच फुट में अधिकता से मिलने वाली चीजें बाद के पाँच फुट में कम और उसके बाद एक दम लुप्त हो सकती है। इसलिए कोई भी व्यक्ति टीले के ऊपर के सात-आठ फुट की खुदाई से यह अनुमान कर सकता है कि अमुक शैली की वस्तु नगर के अन्तिम काल मे व्यवहार में आती थी। यदि किसी शैली की वस्तु किसी ऊपर या नीचे के स्तर में नहीं पायी जाती और वह एक-आध स्तर तक ही सीमित रहती है तो अनुमान किया जाता है कि वह किसी एक विशेष काल का चिह्न है जो थोड़े ही दिनों तक रहा। इस प्रकार की वस्तुए समय निर्धारण की दृष्टि से बहुत महत्त्व की होती हैं क्योंकि उनके आधार पर निश्चित किये गये अनुमान मे गलती की कम सम्भावना होती है। लिखित प्रमाण के अभाव में इसी पद्धति के अनुसार क्रमबद्ध विवेचन कर, प्रत्येक शैली के बर्तनों को ऐतिहासिक तथ्यों के साथ उचित स्थान पर रख कर खुदाई मे मिली वस्तुओं के आधार पर पेट्री फिलिस्तीन के इतिहास की रूपरेखा खड़ी करने मे समर्थ हुए थे।

तृतीय अध्याय

नगर और भवन

नगर अथवा भवन के ध्वसावशेषों की खुदाई एक लम्बी सी खाई के रूप में आरम्भ की जाती है जो धीरे धीरे दायें बायें छोटी छोटी खाइयों के रूप में और आगे जाकर नीची दीवारों के घन चौकोर कमरों के रूप में अन्तत लगती है और समाविष्ट भवनों के भवनांशों का रूप निखरने लगता है और उसका महत्त्व सामने आता है।

पुरातत्त्वविद् को यहां से अपनी बुद्धि का विशेष प्रयोग करना पडता है। उसका पहला काम उस ध्वस्त भवन अथवा नगर का काल निर्धारित करना होता है। अधिकांशत काल का निर्णय दीवारों के घेरे के अन्दर मिली वस्तुओं के आधार पर किया जाता है। काल का यह निर्णय बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उस देश की प्राचीन वस्तुओं, विशेषतया बर्तनों के सम्बन्ध में पूर्व सचित ज्ञान कितना है। आस-पास के अन्य ज्ञात स्थानों से सम्बद्ध स्तरों के ज्ञान के आधार पर ही किसी खुदाई की जाने वाली जगह के किसी स्तर का समय निश्चित किया जाता है। इस प्रकार का काल निर्णय वर्ष में नहीं होता। कभी-कभी हम उसको कांस्य-युग परवर्ती कांस्य-युग अथवा आरम्भिक लौह-युग या इसी प्रकार के अन्य नामों से व्यक्त करते हैं। पर यह युग विभाजन सुदूर भूत के लिए ही होता है। साधारण वर्गीकरण में काल का निर्णय शताब्दियों में किया जाता है और उसी पीठ पर इतिहास के क्रम को स्थिर किया जाता है। इस प्रकार के काल निर्णय श्री माधवस्वरूप वत्स ने हडप्पा की खुदाई में किया है। उनका यह कार्य हमारे देश में, अपनी

दिशा में सर्वथा नया प्रयास है। हो सकता है कि नई खुदाई होने पर उनके इस काल निर्धारण में कुछ परिवर्तन करना पड़े, पर वह परिवर्तन कालक्रम में न होकर काल की अवधि के सम्बन्ध में होगा।

बर्तनो अथवा उसी प्रकार की अन्य वस्तुओं के आधार पर काल का निर्णय अधिकाशत उस युग के सम्बन्ध में किया जाता है जिसे हम प्रागैतिहासिक युग कहते है। ऐतिहासिक युग के ध्वसावशेषो के काल का निर्धारण एव वर्गीकरण सुगमता के साथ राजनीतिक घटनाओं और राजवशो के सहारे किया जा सकता है। ऐतिहासिक युग के भवनो और नगरो के ध्वसावशेषो मे तो ऐसी बहुत सी सामग्री प्राप्त होती है जो स्वय-सिद्ध होती है। यथा अभिलेख, मुद्राए, मुहरें आदि। सारनाथ की खुदाई मे कुमारदेवी की एक प्रशस्ति प्राप्त हुई जिससे ज्ञात हुआ कि कुमारदेवी ने धर्मचक्र नाम से जो भवन बनवाया था, उससे पूर्व वहाँ अशोक-कालीन धर्मराजिका स्तूप था जिसमें धर्माशोक ने पूजा प्रचलन किया था। यह प्रशस्ति भवन के मुखद्वार से थोड़ा सा हट कर मिला था। इस प्रशस्ति से न केवल धर्मचक्र भवन के इतिहास पर प्रकाश पडा वरन् उससे पहले के इतिहास की बात ज्ञात हुई। इसी प्रकार जयपुर रियासत में वैराट नामक स्थान की खुदाई करते हुए दयाराम साहनी को मौर्यकालीन मुद्राओं के साथ-साथ कुछ ऐसे यवन शासको की मुद्रायें मिली जिनका शासन काल अन्य साधनो से ज्ञात था अत उन मुद्राओं के सहारे उस विहार का काल-निर्णय सरलता से किया जा सका। श्रावस्ती की खुदाई मे गोविन्दचन्द्र देव का एक अभिलेख मिला जिसमे जेतवन निवासिनी किसी भिक्षुणी को भूमिदान करने का उल्लेख था। इस अभि-लेख के सहारे जेतवन का स्थान निश्चित करने मे तनिक भी कठिनाई नही हुई। भीटा (प्रयाग) की खुदाई के समय भवनो के फर्श पर जो मुहरें मिली उनसे पुरातत्वविदो को उन भवनो का समय निर्धारित करने म सहायता मिली।

इस प्रकार के स्वय सिद्ध प्रमाणो के अभाव में भवनो का समय निश्चित करने के लिए अन्य साधनो का उपयोग किया जाता है। प्राचीन गाधार में यवन शासको से लेकर कुषाण शासको के शासन काल के बीच विभिन्न समयो में जो भवन बने उनमें अलग अलग ढग के पत्थर लगाये गये थे। उदाहरणार्थ, यवन लोगो ने अपने भवनो में पत्थरो के वर्तुलाकार टुकडे लगाये है, पार्थव और शक लोगो के भवनो में अलकृत और अर्धअलकृत पत्थर लगे है। यही बात तक्षशिला के भवनो को भी देखने से ज्ञात होती है। भवनो की ये विभिन्नताए किसी को भी अपने काल का ज्ञान करा सकती है।

समय-समय पर ईटो की आकृति और आकार प्रकार में अन्तर होता रहा है। इस कारण ऐसे भवनो की ईटो के सहारे, जिनका काल अन्य साधनो से सन्तोषजनक रूप से निर्धारित किया जा चुका है, अन्य भवनो का काल बहुत कुछ अशो तक निर्धारित किया जा सकता है। यह एक ऐसा साधन है जिसके साधारण अभ्यास मात्र से केवल देख करके किसी भवन का काल निर्णय किया जा सकता है। हमारे देश में मौर्य काल की ईटे सामान्यत २१ इच लम्बी १६ से १८ इच चौडी और ढाई से तीन इच तक मोटी होती है। इसी प्रकार कुषाण कालीन ईटो का आकार १८ इच लम्बा १२ से १४ इच चौडा और ढाई से तीन इच मोटा गुप्त कालीन ईटो का आकार उससे छोटा १४ से १६ इच तक लम्बा १० से १२ इच तक चौडा और दो से ढाई इच तक मोटा होता है। परवर्ती ईटें और भी छोटी १० से १२ इच तक लम्बी आठ से दस इच तक चौडी और डेढ से दो इच तक मोटी होती है। पुरातत्त्वविद् इन या इस प्रकार के अन्य साधनो का आधार लेकर किसी भवन या नगर का काल निश्चित करता है, पर कभी-कभी वह इसमें असफल भी हो सकता है। पर उसका यह एक प्रधान कर्तव्य है कि वह किसी न किसी आधार के सहारे उसका काल को ठीक-ठीक निर्धारित करे। यदि काल का निश्चय न किया

जा सके तो उसके सारे श्रम व्यर्थ हो जायेंगे क्योंकि तब खुदाई में मिली चीजों का महत्त्व आँका न जा सकेगा।

खुदाई में निकले भवन के सम्बन्ध मे पुरातत्वविद् की दृष्टि मे दूसरा विचारणीय विषय, उस भवन की बनावट होती है। किसी अभिलेख अथवा किसी अन्य साधन से मालूम हो सकता है कि उस भवन का प्रयोजन क्या था अर्थात् वह मन्दिर था, राजप्रासाद था या साधारण जन-आवास था या और कुछ। ध्वसावशेष की खुदाई का मुख्य उद्देश्य उस स्थान की प्राचीन कालीन अवस्था का ज्ञान प्राप्त करना होता है इसलिए प्रयोजन ज्ञान हो जाना ही पर्याप्त नही है। हम यह जानना चाहते है कि उस काल के उस मन्दिर, राजप्रासाद या जन-आवास का मूल रूप क्या था। इसके जानने के लिए जो साधन हमारे सामने खुदाई से आता है वह गृह-योजना मात्र होती है। उसी पर दृष्टि रख कर पुरातत्वविद् को अन्य वस्तुओ एव अपने संचित ज्ञान का आधार लेकर उस वास्तु के मूल रूप की कल्पना करनी पड़ती है। इस कार्य मे उसे सफलता मिल सके, इसके लिए आवश्यक है कि वह उस भवन के भीतर मिलने वाली छोटी से छोटी निरर्थक प्रतीत होने वाली बातो का भी निरीक्षण, सकलन, आलेखन और सतुलन करे। इस कार्य मे वह किसी शिल्पी को अपना सहायक बना सकता है, पर उसके लिए भी आवश्यक है कि वह स्वय वास्तुकला से परिचित हो। अपना अभीष्ट सिद्ध करने के लिए उसे ईंट-पत्थर की दीवारो तथा उसके सहारे कागज पर अकित गृह-योजना, दोनो पर समान रूप से श्रम करना पडता है। कागज पर अकित गृह-योजना, उन सारी बातो का सार होता है, जो खुदाई मे मिलने वाली वस्तुओ के आधार पर जानी जा सकती है। उसी के सहारे पुरातत्वविद् अपना कार्य करता है।

अपने लक्ष्य पर पहुँचने के निमित्त पुरातत्वविद् को सबसे पहले यह निश्चय करना होता है कि जो गृह-योजना खोद कर निकाली गयी है

व~ पूण ~ या नहीं। सम्भव ह कि कोई दीवार एक दम नष्ट हो गयी हो और उसके अस्तित्व का प्रमाण अप्राप्य हो। ऐसी अवस्था में उसको अनुमान की शरण में जाना पड सकता ह। उसे अपने अनुमान का अन्य साधना से पुष्ट करने की चेष्टा करनी होगी। यह भी सम्भव ह कि उसे खुदाई म दीवारा का जाल सा बिछा मिल। इनमें से कुछ ऐसी दीवारें हा सकती ह जो परिवतन या सवधन के निमित्त बनायी गयी हा। भीटा (प्रयाग) की खुदाई में सर जान माशल का ऐसी ही समस्या का सामना करना पडा था। ऐसी अवस्था में भवन के मूल रूप का समझने के लिए इन दीवारा के ऐतिहासिक महत्त्व को अक्षुण्ण रखते हुए कागज पर अंकित गृह-योजना द्वारा उनका स्पष्टीकरण आवश्यक होगा। सारनाथ की खुदाई में जो प्रधान मंदिर निकला उसका भग्नावशेष जब सामने आया तो देखा गया कि उसका गभगह ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में आस पास छोटा कर दिया गया था और उसके चारा ओर दो दीवारें उठा दी गयी थी। अनुसधान करने पर पता चला कि मूल दीवारा के लिए शिखर का भार वहन करना असम्भव हो रहा था इसलिए उनके सहारे के लिए गभगह छोटा कर ~ा दीवारें खडी कर दी गयी थी।

यदि गृह-योजना ठीक तरह से तयार कर ली जाय तो फिर उसके उद्देश्य का समझना बहुत कठिन नहा होता। जन निवास, दुग और मंदिर की भूमियोजना पहचानने में साधारणतया भ्रम नहीं हुआ करता। मोहे-जो-दडो काल से लेकर आज तक हमारे देश में मकानों की योजना प्राय ~ ~ ~ ~ है। चारा ओर कमरा, सामने स्तम्भयुक्त बारामदा और बीच में आगन। मुख्य दरवाजे और कमरा के देखने से सामान्य योजना का ज्ञान सहज ही हो जाता ह। प्रसाद की समस्या पर विचार करते ही यह स्पष्ट हो जाता ह कि कमरे के समान दिखाई देने वाला कौन सा भाग आगन हो सकता ह। दीवार का मोटाई देखकर भवन के ऊपरी भाग का आकार मिल जाता ह। स्तम्भा का आधार देख कर स्तम्भा

की ऊँचाई का अनुमान और उसी के सहारे भवन की ऊँचाई का अनुमान किया जा सकता है। ध्वसावशेष में मिले वर्तुलाकार ईंटों को देख कर मिहराब और वर्तुलाकार छतों का ज्ञान होता है।

सर आर्थर ईवास इसी के सहारे क्रीट के शासक मिन के राजप्रासाद के दुमजिले होने की बात का पता लगा सके थे। जिस समय उन्होंने खुदाई की, उन्हे जो दीवारे खड़ी मिली उनमे पत्थरो की कुछ ही पक्तियाँ थी फिर भी भूमि योजना एव खुदाई मे प्राप्त वस्तुओ के आधार पर मिन शासको के शानदार भवन की रूपरेखा उन्होंने सामने ला खड़ी की, जिसकी कल्पना प्राप्त वस्तुओं को देखने वाला कोई भी सामान्य व्यक्ति कभी नहीं कर सकता था।

भूमि-योजना के आधार पर किसी भवन के मूल रूप का अनुमान और सरक्षण किस सीमा तक किया जा सकता है, इसका एक अत्यन्त उपयोगी उदाहरण सर ऊले ने ईसा से १४ शताब्दी पूर्व के तेल-अल-अमर्ना (मिस्र) के एक नगर की खुदाई मे उपस्थित किया है। इस नगर को अखेन-अतन नामक शासक ने बसाया था। उसका विवरण उन्ही के शब्दो मे इस प्रकार है—"नगर के दक्षिणी किनारे पर हम एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ एक बहुत बड़ी चहारदीवारी के भीतर विस्तृत भूमि मे पत्थरो के टुकडे बिखरे हुए थे। उनमे दो स्तम्भो के टूटे अग, एक दो उत्कीर्ण पत्थर थे। बाकी जो भी पत्थर थे वे उत्कीर्ण पत्थरो के टुकडे मात्र थे। उनके देखने से यह स्पष्ट प्रकट होता था कि उस भवन के अवशेषो का परवर्ती काल मे चूना बनाने मे उपयोग किया गया है। उसकी दीवार गिरा कर अलकरण विकृत कर दिये गये है और सामग्री प्रयोग के लिए अन्यत्र उठा ले जायी गयी है। पुरातत्व की दृष्टि से उस स्थान का महत्त्व प्राय नष्ट हो चुका था फिर भी यह सोचकर कि शायद कोई उपयोगी वस्तु बच रही हो, हमने उसे खोदने का निश्चय किया। पर खोदने पर जो परिणाम सामने आया वह भी निराशाजनक ही था। फर्श के ऊपर वास्तु का भाग

केवल कुछ इंच बचा था। पत्थरों के टुकडो के नीचे हमें चौरस आयताकार चूने का फर्श मिला जो लगभग एक फुट मोटा था और रेगिस्तानी बालू के ऊपर नाव को दृढ बनाने के लिए बनाया गया था। उसके नीचे कुछ भी नहीं था। ऊपर की अवस्था हम खुदाई के पूर्व देख ही चुके थे। मंदिर का कोई भी पत्थर अपने स्थान पर नहीं था। इतना ही नहीं उस स्थान पर शायद ही कोई पत्थर बच रहा हो।

पलस्तर वाली नींव पर दीवार और फर्श के पत्थर जोड़ने के लिए चूने का प्रयोग किया गया था। जो पत्थर उखाडे गये थे, उनका चूना पलस्तर की फर्श में चिपका रह गया था। चूने के इस अवशेष पर पत्थर की छाप यहां तक कि पत्थरों पर लगे छेनियों के निशान भी स्पष्ट रूप में अंकित जान पड़ते थे। यद्यपि वहां कोई पत्थर नहीं था तथापि चूने के निशानों के सहारे पत्थरों को आसानी से गिना जा सकता था। उन्हें ध्यानपूर्वक देखने पर अनुमान हुआ कि शायद इन पत्थरों के चिह्नों के सहारे दीवार और फर्श के बीच अंतर किया जा सके। अस्तु मजदूरों ने उस जगह को अच्छी तरह साफ कराया गया। जब मैं अपने दल के वास्तुकार रेटन के साथ उस स्थान का निरीक्षण इस दृष्टि से कर रहा था कि पत्थरों के उन चिह्नों के आधार पर किसी प्रकार गृह-योजना का अनुमान लगाना सम्भव है या नहीं, तब एक विचित्र बात दिखाई पडी।

वहां-वहीं पत्थर के साथ-साथ चूना भी उखड गया था और पलस्तर वाला फर्श अपने चिकने रूप में बचा था। पलस्तर के ऐसे फर्श पर हमें यत्र-तत्र हलकी लाल रेखा सी दिखाई पड़ी जिसके ऊपर दीवाल वाले चूने का पत पटा हुआ था। इस रेखा से एक बात अपने आप स्पष्ट हो गयी। पलस्तर वाला फर्श जब सूख कर जब पक्का हो गया तब राज गीरों ने वास्तुकार की योजना को कार्यान्वित करने के लिए लाल रंग में भरा सूत्र लेकर प्रत्येक सम्भाव्य दीवार की भूमि पर फैला कर पटक दिया था जिससे उस पर सीधी रेखा इस प्रकार हो गयी है मानो रूलर से खींची

गयी हो। ऐसी दो रेखाओ के बीच राजगीरो ने दीवार खडी की थी। अब हमे अनुमान लगाने की आवश्यकता न थी। हमारे सामने तो अब मिस्री वास्तुकार द्वारा अकित मूल योजना ही पलस्तर के फर्श पर मौजूद थी। उसे कागज पर अकित कर लेने के वाद हम भवन के वाह्य रूप के सम्वन्ध मे अनुमान लगाने लगे। स्थान-स्थान पर दीवारो की मोटाई मे काफी अन्तर था। पत्थर के अनेक टुकडो पर दोनो ओर चित्र उत्कीर्ण थे। स्पष्ट था कि वे दीवार के दोनो पटलो को व्यक्त करते थे। ऐसे पत्थरो की मोटाई मे भी भिन्नता थी। इस प्रकार के सारे टुकड़े एकत्र किये गये और नाप के अनुसार भूमि योजना के आधार पर उनका किसी न किसी दीवार से सम्वन्ध स्थापित किया गया।

"अखेन-अतन-कालीन वास्तुकारो के पास अलकरण के साधन सीमित थे, इस कारण मन्दिरो के दीवारो पर जो दृश्य अकित किये गये थे, वे प्राय एक से ही थे और वार-वार दुहराये गये थे। यद्यपि हमारे पास प्रत्येक दीवार के पटल को व्यक्त करने वाले वहुत ही थोडे टुकडे थे तथापि उन पर उत्कीर्ण चित्रो के विषयो को पहचान कर, अन्य भवनो पर अकित सुरक्षित चित्रो के सहारे दीवारो के सारे अलकरणो को पूरा करना सरल था। स्तम्भो के गोलक, उनके भूमि पर पडे रहने की अवस्था तथा भूमि योजना से ज्ञात हुआ कि उस भवन मे दो तरह के स्तम्भो का प्रयोग हुआ था। हमने उन गोलको को यथास्थान रखा। मिस्री स्तम्भो की ऊँचाई सामान्यत व्यास के निश्चित अनुपात मे होती है। इस आधार पर हमने उसकी ऊँचाई निर्धारित की और उसी के अनुपात मे भवन की ऊँचाई का भी अनुमान किया। कारनीस के कुछ टुकडो से हमने छतो की योजना का अनुमान किया और एक उत्कीर्ण धरन के आधार पर मुख्यद्वार का रूप निर्धारित किया। इस प्रकार हम उस मन्दिर के मूल रूप तक पहुँचने मे सफल हुए जो एक अज्ञात शैली का था। एक भी पत्थर अपनी सुरक्षित अवस्था मे न था वरन् दो तीन को छोड कर सब धूल मे मिल गये थे फिर

भी हम मिस्री कला के एक मूल्यवान सामग्री की रक्षा करने में सफल हो सके। एक अन्य वस्तु ने हमें विशेष सन्तोष प्रदान किया। नाव वाले पत्थर के फर्श का आकार भवन के आयतन से बड़ा था और उसके चारों ओर दीवारों के बाहर छः-छः इंच की दूरी पर छेद थे जो पलस्तर की धार पर नीचे बालू में धँसे हुए थे। इन्होंने कुछ क्षण तक हमें उलझन में डाल दिया फिर ध्यान पूर्वक खोजने पर हमें एक छेद में नष्ट काष्ठ का कुछ चिह्न मिला जिससे सारी बात साफ हो गयी। मिस्र के मन्दिरों के चित्रों में सदैव भवन के बगल में ध्वज स्तम्भ और उस स्तम्भ पर फहराता हुआ पताका दिखाया गया है। ध्वज स्तम्भ के प्रत्यक्ष उदाहरण के रूप में हमें ये गड्ढे मिले जो मिस्र के इतिहास में उसके एक मात्र अवशिष्ट प्रमाण हैं। हम अपने चित्र में इस वस्तु को भी ठीक माप के अनुसार रख सके।' पुरातत्वविद् किस प्रकार अपने प्रयत्नों से हमें पुरातन युग में ले जाकर खड़ा कर सकता है और उसमें उसे किस हद तक सफलता मिल सकती है, इसका यह एक उज्ज्वल उदाहरण है।

हम यह जानते हैं कि किसी भवन की शैली न तो आकस्मिक होती है और न मनमानी, वरन् जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए उसका विकास होता है। इसलिए पुरातत्वविद् जब हमारे सम्मुख किसी प्राचीन भवन की रूपरेखा उपस्थित करता है तो उसकी महत्ता केवल इतनी ही नहीं होती कि वह वास्तुकला का इतिहास प्रस्तुत कर रहा है वरन् वह स्त्री-पुरुषों के जीवन की अवस्था और उनके भावनाओं के व्यक्त करने के साधन को भी उपस्थित करता है। यदि हम यह ज्ञान न हो कि किसी युग का मनुष्य किस वातावरण में रहता था और उसका किस ढंग का व्यक्तित्व था तो जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण को समझने में हम सर्वदा असमर्थ रहेंगे। मनुष्य के जीवन पर उसके निवासस्थान का क्या प्रभाव पड़ता है, यह हम सब दशा में अनुभव नहीं होता, किन्तु इतना तो है ही कि वह हमारी निजी रुचियों को व्यक्त करता है। इस दृष्टि

बना रही थी कि तीन हजार वर्ष पूर्व वहाँ गदहा बँधा करता था। मकान के कच्ची दीवारों पर अप्रौढ़ चित्र अंकित थे जिन्हें मजदूरों ने अपने घर के सजाने के लिए खींच रखे थे अथवा उनके द्वारा उन्होंने अपने अव्यक्त भावों को व्यक्त करने की चेष्टा की थी। फर्श पर बिखरे तावीजों पर अंकित चित्र मजदूर श्रेणी के लोकप्रिय देवताओं का पता दे रहे थे। बिखरे हुए औजार और स्न के साधन आदि प्रत्येक मजदूर के धंधे और उनके अवकाश के समय के मनोरंजन को बता रहे थे।

एक मकान तो बहुत ही मनोरंजक रूप में अपने मालिक का चरित्र बता रहा था। जिस पंक्ति में यह मकान था, उसके सभी मकानों का द्वार पूरब की ओर खुलता था। केवल यह ही एक ऐसा मकान था जिसका दरवाजा पीछे की ओर था, जिधर अन्य मकानों के दीवार मात्र थे। इस प्रकार की विरोधी अवस्था देख कर अन्वेषक को कौतूहल हुआ और उन्होंने विशेष ध्यान से उसकी परीक्षा की। परीक्षा करने पर पता चला कि उस मकान का द्वार भी पहले अन्य मकानों की तरह ही पूरब की ओर था। बाद में किसी समय वह बन्द कर दिया गया और पीछे की ओर नया दरवाजा बनाया गया। ऐसी अवस्था देखकर स्वाभाविक कल्पना होती है कि उस मकान के स्वामी का अपने पड़ोसियों से झगड़ा रहा होगा और उसे उनसे घृणा रही होगी किन्तु किन्हीं नियमों अथवा परिस्थितियों में बँधे रहने के कारण वह उस मकान को छोड़ न सकता रहा होगा। अतः विवश होकर उसने सामने का दरवाजा बन्द कर लिया और पीछे की ओर दरवाजा खोल कर उस भिन्न गली में सम्पर्क की खोज ली होगी।

इस बात को पढ़ कर कोई भी पाठक पूछ सकता है कि तीन हजार वर्ष पूर्व कुछ मजदूर अज्ञात भाव से रहते थे, इस बात का विचार किए बिना [illegible] सकता है? यह तो [illegible] स्वाभाविक साधारण तथा निरर्थक सी बात है, जो सब जगह और सब काल में होती रहती है। बात

भी यही है। हमारे इस उल्लेख करने का तात्पर्य उस घटना को किसी प्रकार का महत्त्व देना नही है, वरन् केवल इस बात की ओर संकेत करना है कि मिट्टी के नीचे इस तरह की साधारण से साधारण बात भी दबी पड़ी रहती है और यदि ध्यान दिया जाय तो सरलता से ज्ञात हो सकती है। यदि पुरातत्वविद् अपने आलेखन और निरीक्षण में सतर्क रहे तो उसे इस तरह जीवन की कितनी ही महत्त्वपूर्ण बातें मालूम हो सकती है।

* । *

चूने-मिट्टी के मूक साक्षी और छिन्न-भिन्न वस्तुओ से संचित ज्ञान को जीवन के इतिहास मे सम्बद्ध करना पुरातत्वविद् का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। उसका यह प्रयत्न किसी भी वंश, राष्ट्र अथवा देश के प्रचलित इतिहास कथा को पुष्ट अथवा विनष्ट कर सकता है। उसमें वह किस प्रकार सफल होता है यह मौखिक रूप से बताना तनिक कठिन है। कदाचित उसका स्पष्टीकरण किसी रूप में इस उदाहरण से हो सके।

जनश्रुति रही है कि गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् बगाल में अराजकता फैल गयी थी। उस अराजकता का अन्त पाल शासको ने किया ऐसा उनके अभिलेखो से प्रकट होता है। बोगरा जिले के महाप्रस्थानगढ नामक स्थान की खुदाई मे दो स्तरो मे, एक के ऊपर एक दो पाल-कालीन मन्दिरो के अवशेष मिले। पूर्व पाल-कालीन मन्दिर के स्तर तक पहुँचने के लिए जब उत्तर पाल-कालीन मन्दिर के अवशेष हटाये गये तब ज्ञात हुआ कि अर्घ-जल को गर्भगृह से बाहर गिराने के लिए जो नाली बनायी गयी थी उसमे गुप्तकालीन एक सुलक्षत स्तम्भ का प्रयोग हुआ है। इससे इस बात का आभास मिला कि पूर्व पाल-कालीन मन्दिर के स्थान पर कोई और भी मन्दिर था जो सम्भवत गुप्त कालीन रहा होगा। जब गर्भगृह के पथ की सीढियाँ उखाडी गयी तो उसके नीचे गुप्त-कालीन मन्दिर के स्तम्भ, चौखट आदि निकले। इससे इस धारणा की पुष्टि हुई कि जिस समय महाप्रस्थानगढ (प्राचीन पुण्ड्र) मे, गुप्त साम्राज्य के पतन

के बाद काश्मीर के यशोवर्धन, मुक्तापीड, तथा मध्यप्रान्त के पाल आदि के आक्रमण से अराजकता फैल रही थी, उस समय वहां कोई गुप्त मन्दिर था जो ध्वस्त हो गया और उसके ध्वसावशेष पर प्रथम पाल शासकों के समय जब मन्दिर का निर्माण हुआ तो वास्तुकारों ने उस मन्दिर के बनाने में उस गुप्त मन्दिर के सामग्री का उपयोग किया। पश्चात गुर्जरों की प्रतिद्वन्दिता के कारण पाल साम्राज्य का ह्रास हुआ और जब महिपाल प्रथम ने उसको पुनरुज्जीवित किया तो उसके शासन-काल में या उसके बाद फिर दूसरा मन्दिर बना।

इस उदाहरण में हम देखते हैं कि हमें जो थोड़ी सी बातें ज्ञात थीं उसका समर्थन इन मन्दिरों की खुदाई से हो गया। किन्तु उन ध्वसावशेषों के सम्बन्ध में, जिनका किसी प्रकार का इतिहास पहले से ज्ञात नहीं होता वहां पुरातत्वविद् को अपने अनुमान की शरण लेनी पड़ती है। ऐसी अवस्था में वह जिस निष्कर्ष को पहुँचता है वे अटल या निर्विवाद होते हैं ऐसा तो नहीं कहा जा सकता किन्तु यदि उसने अपनी तर्क बुद्धि का उचित उपयोग किया है जैसा कि हम पहले बता आये हैं तो निस्सन्देह वह इतिहास की उत्तम सामग्री उपस्थित कर सकता है।

मान लीजिये पुरातत्वविद् एक ऐसे टील की खुदाई कर रहा है जिसमें भवनों के अवशेष एक दूसरे के ऊपर एक अनिश्चित स्तर पर स्थित हैं, किन्तु सारे भवन एक ही काल या सभ्यता युग के हैं जिसका कोई लिखित प्रमाण नहीं है। ऐसी अवस्था में खुदाई में उसे ऐसी वस्तुएं तो मिल जाती हैं जिनसे उस स्थान के निवासियों के जीवन पर प्रकाश पड़ सके, किन्तु प्रश्न उपस्थित होता है कि उनके द्वारा वह ऐतिहासिक ज्ञान तक किस प्रकार पहुँच सकता है।

इसके लिए पुरातत्वविद् को प्राचीन साहित्य में उल्लिखित सामग्री पर दृष्टि डालनी पड़ती है। इसमें तुलनात्मक पुरातत्व का महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। मान लीजिये नीचे का स्तर उत्तर प्रस्तर-युग का है

और वहाँ पत्थर के हथियारो और हाथ के बने खुरदरे मिट्टी के बर्तनों के अतिरिक्त बहुत कम सामग्री मिलती है; लेकिन जो सामग्री मिलती है उनका अन्य स्थानो मे प्राप्त वस्तुओ से बहुत कुछ साम्य जान पड़ता है। इस आधार पर पुरातत्वविद् यह निश्चय कर सकता है उस स्थान के निवासी सभ्यता की किस शाखा के थे।

ज्यो-ज्यो स्तर ऊँचा होता जायेगा, पत्थर के स्थान पर धातु की वस्तुए मिलेंगी। हो सकता है किसी स्तर पर तांबे के ऐसे औजार और हथियार दिखाई पड़े जिनका स्वरूप नौसिखुओ द्वारा प्रयुक्त होने वाले हथियारो सरीखा न होकर निपुण शिल्पियो द्वारा बनाये गये हथियारों सरीखा हो। इनके साथ ही जब किसी दूसरे देश अथवा स्थान पर दृष्टि डाला जाता है तो वहाँ उसी ढंग के हथियार और औजार दिखाई तो पडते है किन्तु वहाँ उनका विकास किसी साधारण वस्तु या पत्थर से हुआ दिखाई पडता है। ऐसी अवस्था में पुरातत्वविद् इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि उसे जो चीजे खुदाई मे मिली है वे स्थानीय नही है वरन् बाहर से लायी गयी हैं। धातु-सामग्री के स्थानीय अथवा विदेशी होने का निर्णय वहाँ पाये जाने वाले मिट्टी के बर्तनो की सहायता से भी किया जा सकता है। जहाँ पत्थर का स्थान धातु लेता दिखाई पडता है, वहाँ भी मिट्टी के बर्तनो में पूर्ववर्ती बर्तनो का प्रभाव पूर्ण रूप से परिलक्षित होता है। बर्तनो का निर्माण एक स्थानीय कला है। इसलिए यदि उन पर किसी प्रकार का बाह्य प्रभाव नहीं जान पडता तो सुगमता से कहा जा सकता है कि वहाँ के निवासियो के जीवन पर कोई बाहरी प्रभाव नहीं पडा था और वे अक्षुण्ण रूप से वहाँ बने हुए थे और धातु का परिचय उन्हे शान्तिमय उपायो अथवा व्यापार के द्वारा हुआ था।

यदि पुरातत्वविद् खुदाई करते-करते किसी ऐसे स्तर पर पहुँचता है जहाँ उसे राख बिखरा मिलता है तो समझ लीजिये वहाँ किसी समय कोई दुर्घटना हुई थी। यदि राख थोड़े ही क्षेत्र में फैली हुई है या उसकी

मात्रा बहुत ही कम है तो समझा जा सकता है कि आग लगने की कोई छोटी-मोटी घटना हुई होगी। किन्तु यदि अधिक भाग में राख बिखरी हुई है और दीवारों पर जलने के चिह्न दिखाई पड़ते हैं तो उसका स्पष्ट अर्थ यह है कि वह नगर जल कर नष्ट हुआ है। अब यदि राख के ऊपर वाले स्तर में नये ढंग के बरतन मिलते हैं और उनका कोई भी सम्बन्ध राख के नीचे वाले स्तर पर मिलने वाले बरतनों के साथ नहीं जान पड़ता तो उसका सीधा सादा अर्थ उस स्थान के निवासियों का विनाश तो है ही, साथ ही यह भी है कि उस पर किसी विदेशी जाति ने विजय प्राप्त की थी। अब यदि इस नये ढंग के बरतनों का सादृश्य अन्यत्र कहीं मिल सके तो सुगमता से उस विजेता जाति को पहचाना जा सकता है। यदि किसी स्तर पर आग की राख के स्थान पर हवा से बिखर बालू अथवा बरसात में बह कर आयी मिट्टी और मकान के गिरे मलबों से बना चिकना स्तर दिखाई पड़े तो उसका स्पष्ट अर्थ यह होगा कि वह स्थान कुछ काल के लिए जन शून्य हो गया था और कुछ काल के बाद वहाँ नये लोग आकर बसे। इस प्रकार के स्थान का सुन्दर उदाहरण श्री मजूमदार को सिन्ध के नवाबशाह जिले में चन्हु-दड़ो नामक स्थान में मिला था। वहाँ पर उन्हें एक ही स्थान पर पाँच कालों के अवशेष मिले। उनके बरतनों से स्पष्ट जान पड़ता है कि यहाँ की सबसे प्राचीन सभ्यता वैसी ही थी जैसी कि मोहेंजो-दड़ो और हड़प्पा की। अर्थात् ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व वहाँ जो लोग बसते थे वे मोहेंजो-दड़ो और हड़प्पा वाले ही लोग थे। उसके बाद ऊपर जो स्तर प्राप्त हुआ उसमें लाल रंग के बरतन मिले जिनकी सजावट काले रंग से की गयी थी। इस ढंग के बरतन सरकाना जिले के झूकर नामक स्थान में पाये गये थे। इससे अनुमान होता है कि उस स्तर के निवासी झूकर निवासियों के परिवार के थे। इनका काल १७०० वर्ष ईसा पूर्व अनुमान किया जाता है। इस स्तर के ऊपर बालू और मिट्टी पड़ी हुई थी जो इस बात का द्योतक था कि इसका विनाश जल-प्लावन

से हुआ था। इस स्तर के ऊपर पुन मोहे-जो-दडो के से वर्तन मिले। जिनसे जान पडता है कि वहाँ के निवासी इस स्थान पर दुबारा आकर बसे थे। इन लोगो के बाद एक अन्य जाति के लोगो के यहाँ आकर बसने के चिह्न ऊपर वाले स्तर मे पाये गये है। इन लोगो के बर्तनो का रंग धूसर-काला है और उनकी सभ्यता बहुत पिछडी हुई थी; उनके निवास बाँस फूस के बने हुए थे। उनके बिखरे हुए राखो से जान पडता है कि उनके विनाश का कारण कोई अग्निकाड था। हो सकता है कि उन्हे किसी अन्य जाति ने पराजित किया हो या अग्निकाड का कोई और कारण रहा हो। इन लोगो की सभ्यता का नाम मजूमदार ने झाँगुर रखा है क्योंकि उस ढग के वर्तन उन्हे झाँगुर नामक स्थान मे पहले पहल मिले थे। ताम्रयुगीन इन चार काल की सभ्यता चिह्न के बाद सबसे ऊपरी स्तर मे मुसलिम काल के कब्र पाये गये है। इससे जान पडता है कि वह स्थान एक दीर्घ काल तक एक दम उजाड पडा रहा।

कभी-कभी किसी वस्तु की शृखला अन्यत्र मिलने पर भी उसका तारतम्य ढूँढना पडता है। मिस्र मे प्रथम राज वश काल में (३३०० ई० पू०) बेलनाकार मुहरो का प्रयोग पाया गया है। ये मुहरे पत्थर या सीप की बनी हुई बेलन के आकार की है और उन पर हलके अभिलेख खुदे हुए है जो मिट्टी पर बेल कर अकित किये जाते थे और अपने स्वामी के अधिकार को व्यक्त करते हैं। लगभग इसी प्रकार की बेलनाकार मुहरे मेसोपोटामिया मे पायी गयी है। दोनो देशो मे बेलनाकार मुद्राओ का आविष्कार स्वतन्त्र रूप से हुआ होगा, ऐसी सम्भावना कम ही है। ऐसी अवस्था मे स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि उसका जन्म उन दोनो देशो मे से कहाँ पर हुआ। मिश्र मे ये मुहरे अचानक आविर्भूत हुई जान पड़ती है और शीघ्र ही अव्यवहृत होती जान पडती है। इसके विपरीत मेसोपोटामिया मे उनका प्रचलन लगभग दो हजार वर्ष तक होता रहा मेसोपोटामिया मे स्वाभाविक रूप से परम्परा गत मिट्टी का व्यवहार

लखन सामग्री के रूप में होता रहा ह। मिट्टी पर इन मुहरा की छाप आसानी से आ सक्ती थी। मिस्र में लेखन सामग्री कागज (पपीरस) था जिस पर बेल कर आसानी से छाप नही उतारी जा सक्ती। इसलिए स्पष्ट रूप स अनुमान होता ह कि कागज का प्रयोग करने वाल लोगा न बेलनाकार मुहरा का आविष्कार कभी न किया होगा। इसलिए मानना चाहिये कि उन बेलनाकार मुहरा का जन्मस्थान मेसोपोटामिया ह और मिस्र वाला ने उसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपनाया था।

इस अध्याय को समाप्त करते हुए एक बात और स्पष्ट कर देना उचित हागा कि पुरातत्वविद् अपनी खोजो के आधार पर मानव इतिहास का बहुत कुछ अशो तक निर्माण कर सकता ह, वह उसके परिवतन के प्रमाण दे सकता ह शोध उपस्थित कर सकता ह, सभ्यता के विकास का खोज कर बता सकता ह, किसी नगर अथवा राष्ट्र के जीवन की ऐतिहासिक क्रम के अनुसार व्याख्या कर सकता ह, किन्तु लिखित प्रमाण के अभाव में उनका काल निर्धारित नही कर सकता। बहुधा यह प्रश्न किया जाता ह कि अमुक घटना कब हुइ? पुरातत्वविद् यह तो बता सकता ह कि वह किस अवस्था या किस अवसर पर हुई थी किन्तु उसके समय को वर्षों में गिन कर नहा बता सकता। उसके पास इमे ज्ञात करने का न तो कोई निश्चित सिद्ध सिद्धान्त ह और न कोई साधन। भूमि का स्तरीकरण भी किसी प्रकार के नियमित सिद्धान्त पर अवलम्बित नही होता। यदि पहले तीन फुट का समय प्रति फुट सौ वष आँका गया ह तो इसका अथ यह नही लगाया जा सकता कि दस फुट का अथ एक हजार वप होगा। वह तीन चार हजार वष का भी द्योतक हा सक्ता ह। पुरातत्वविद् सुविधा के लिए समय का शताब्दियो में भले ही व्यक्त करे पर वस्तुत वह उसका विचार नही ही करता ह। उसस किसी तिथि के सम्बन्ध में पूछा जाय ता वह अनभिज्ञात्मक ही उत्तर देगा। ज्या-ज्यो हम इतिहास युग से जो लिखित साधना पर अवलम्बित होता ह, प्रागैति

हासिक युग की ओर, जो पुरातत्व का प्रधान क्षेत्र है, बढते है तो तिथियो के स्थान पर हमे युगो की शरण लेनी पडती है और व्यक्ति की अपेक्षा जाति की चेष्टाओ पर विचार करना पडता है। इस प्रकार पुरातत्वविद् इतिहास का चित्रण एक मोटी तूलिका से ही करता है। पर इसका यह अर्थ कदापि नही है कि उसके चित्रण मे यथार्थ का अश है ही नही। उसमे यथार्थ का अश पर्याप्त होता है यद्यपि उसे हम कल्पना-जन्य कह सकते है।

चतुर्थ अध्याय

समाधि-सामग्री

समाज के अनेक देशों में और इतिहास के अधिकांश काल में लोगों में किसी न किसी रूप में ऐसा कोई विश्वास प्रचलित रहा है कि मृत्यु के पश्चात् भी जीव का अस्तित्व रहता है। इस विश्वास के अनुसार जिन लोगों में शव की दाहक्रिया न कर समाधि में सुरक्षित रूप से रखने की प्रथा प्रचलित रही है उन लोगों ने शव के साथ समाधि में ऐसी वस्तुएं रखना अपना कर्तव्य माना जिनकी उनके विश्वासानुसार मृत व्यक्ति को परलोक में आवश्यकता होगी। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि समाधियों की खुदाई में पुरातत्वविदों को जो वस्तुएं प्राप्त हुई हैं उनसे इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सका है कि तत्कालीन लोगों का विश्वास मृत्यु के पश्चात् आत्मा के अस्तित्व में रहा है। इस कथन से हमारा तात्पर्य [illegible] नहीं है वरन् हम उन वस्तुओं की ओर संकेत कर रहे हैं जिन्हें पुरातत्वविद् समाधि-सामग्री कह कर व्यक्त करते हैं।

यूनानी लोग शव के मुँह में एक सिक्का रखते थे ताकि वह [illegible] पार करते समय [illegible] को पार [illegible]। किसी काल [illegible] शव [illegible] और [illegible] और उनके [illegible] सभी [illegible] [illegible] कठिनाई न हो। [illegible]

एक समय यह भी विश्वास था कि यात्रा जल-मार्ग से होती है, इसलिए खाने-पीने के ये सारे सामान बर्तन आदि एक धातु-विशेष के नाव मे रख कर शव के साथ रखे जाते थे। इस यात्रा के अतिरिक्त परलोक मे भी एक जीवन है, ऐसा उन लोगो का विश्वास था। उसके सम्बन्ध मे उन लोगो की कल्पना थी कि वह हमारे इस जीवन के समान ही होगा, इसलिए यह भी अनुमान किया जाता था कि उस लोक मे मनुष्य की वे ही आवश्य-कताएं होगी और उसका वही व्यवसाय होगा जो इस लोक मे रहा है। वह जिन वस्तुओ का इस लोक मे प्रयोग करता रहा है, उन्ही का प्रयोग वह वहाँ भी करेगा। इसलिए वे लोग उसके शव के साथ वे ही वस्तुए रखते थे। स्त्रियो के साथ चर्खे का तकुआ, सुई, आइना, शृगार-दान, जौहरी के साथ तराजू और बाट, बढई के साथ आरी और बसूला, सैनिक के साथ युद्ध के अस्त्र-शस्त्र रखे जाते थे। शासक के शव के साथ लौकिक तडक-भड़क अनिवार्य था। सुमेर के शासको के साथ न केवल सोना-चाँदी, जर-जवाहरात, कपडे-बर्तन ही रखे जाते थे, वरन् उनके साथ कत्ल करके उनके मुसाहब लोग भी दफनाये जाते थे ताकि वे लोग उस लोक मे उसके शासन-व्यवस्था मे सहायता कर सके। मिस्र के शासक--फिराऊनो के समाधियो की, जो पत्थर काट कर टेढे मेढे गुफा के रूप मे बनाये गये थे, तडक-भडक अनोखी ही होती थी। वहाँ के सुप्रसिद्ध शासक-तूताखामन की समाधि की जब खुदाई हुई तो उसके वैभव को देख कर सारा ससार आश्चर्य-चकित रह गया।

इस प्रकार समाधियो मे जो वस्तुए सरक्षित होती हैं उनसे तत्कालीन जीवन का परिचय बहुत ही विस्तार के साथ मिलता है। इस दृष्टि से नगर और भवनो के अवशेषो की अपेक्षा समाधियो का पुरातत्वविद् के लिए विशेष महत्त्व होता है। किन्तु भारतवर्ष मे अति प्राचीन काल से मृत्यु के पश्चात् शवदाह की प्रथा रही है, इस कारण यहाँ उस ढंग की समाधियाँ नही मिलती जिस ढग की अन्यत्र पायी जाती है।

यहा वहीं बतना में रखे अस्थि भस्म पाये जाते है पर उनमें पुरातत्व की दृष्टि से महत्त्व की सामग्री नहीं होती। अन भारतीय पुरातत्व में समाधि स्थान की खुदाइ की चर्चा नही पायी जाती और वह हमारे लिए महत्त्व नहा रखता। फिर भी हम अन्यत्र होने वाली समाधियो की खुदाई की चर्चा इस दृष्टि से कर रहे है कि उसकी अनेक बातें हमारे लिए उपयोगी हो सकती है।

प्राचीन काल मे आज तक धन के लोभियो की कमी नही रही है। ये लोग सदय इस बात के इच्छुक रहे है कि जहाँ से भी हो धन प्राप्त किया जाय। अस्तु, प्राचीन विश्वास को जानते और मानते हुए भी इन लोभियो की दृष्टि से किसी भी देश की समाधियो का बचा रहना अत्यन्त कठिन था। अतएव अधिकाश महत्त्व की समाधियो का धन इन्ही लोभियो के हाथ लगा और आज उनका पुरातात्विक महत्त्व नष्ट हो गया है। उर की समाधियो की खुदाई म अनेक सुरगो के अवशेष मिले है जिनके द्वारा चोरो ने घुस कर भीतर ही भीतर चोरी की थी। इन चोरो के लिए समाधियो का पता लगाना कठिन न था। यहा आज की समाधियो की भाति ही पक्की समाधियाँ बनायी जाती थी। थब के शासको की घाटी में स्थित फिराउनो के समस्त समाधियो म केवल एक—तूतानखामन की समाधि अब तक लुटेरो की दृष्टि से बची हुई थी।

ये लुटेरे अपना काम उन्ही दिनो आरम्भ कर चुके थे क्योंकि २०वें राजवश के फिराउनो ने थेब की घाटी में होने वाली लूट की जाँच के लिए एक कमीशन बठाया था। उस कमीशन की पूरी रिपोर्ट प्राप्त हुई है। यह लूटपाट केवल शाही समाधियो तक ही सीमित नही था। मिस्र की ९८ प्रतिशत प्रस्तरिक समाधियाँ लुटेरो की नजर से नहीं बच सकी और उनकी अधिकाश सामग्री निकाल ली गयी है। जो बची भी है वह वही है जो लुटेरो की दृष्टि में निरर्थक थी। ऐसी अवस्था में यदि कोई समाधि साबित दिखाई पडे तो उसके प्रति पुरातत्वविद् का आशावान

वस्तुए भले ही खिच गयी और टेढी-मेढी हो गयी हो, अथवा उनमें घुन लग गया हो और वे खोखली हो गयी हा, फिर भी उनका अस्तित्व तो रहना ही है। इस प्रकार तीन चार हजार वष बीत जाने पर भी उन समाधियो में रखी गयी चारपाई की पट्टिया, सन्दूका और उनकी नक्का शिया का कम हानि पहुँची है। वहाँ कपडे भी अपनी स्वाभाविक अवस्था में पाय गय ह। स्त्रिया क कपड यद्यपि काल के प्रभाव से पील पड गये ह फिर भी आज तक काफी नम और मजबूत बन हुए ह, और पहने जा सकते ह। धातु की वस्तुओ में भी नाममात्र का परिवर्तन हो पाया ह।

इसी प्रकार डेनमार्क में ताम्रयुग के दाव पेडा के तनो के बने कफन में दबे पाये गये ह। यद्यपि उन्होंने समय के प्रभाव से प्रास्तरिक रूप धारण कर लिया ह उनके वस्त्रा के रग में परिवतन हो गया ह तथापि वे ज्या के त्यो ह। इनके ठीक विपरीत उर में शव और सामग्री के ऊपर एक मामूली चटाई लपेट दी जाती थी, जिसके कारण वहा की समाधियाँ खुदाइ के समय अत्यन्त नष्ट अवस्था में पायी जाती ह। लकडी की वस्तुओ का तो मिट्टी के चिकन स्तर पर एक छाप मात्र बच रहता है। उस पर बहुत ही बारीक मटमली सी बुकनी दिखाई पडती है जिसका केवल चित्र-मात्र लिया जा सकता ह और वह साँस की हलकी सी फूक से उड जा सकती ह। ताम्र और कांस्य की वस्तुए तो नष्ट होकर हरे रग के आकृतिहीन ढेला के रूप म परिवर्तित मिलती ह। चाँदी का अस्तित्व केवल नील रग की बुकनी के रूप म पाया जाता ह और शव की हड्डियाँ भी गल गयी होती ह, और दाँत केवल यह व्यक्त करने को बचा रहता ह कि यहाँ कोई मानव शिर विश्राम कर रहा था। दाँत एक ऐसा विचित्र वस्तु ह जा जीवन में बडी शीघ्रता से नष्ट होता रहता ह किन्तु मृत्यु के पश्चात् उसका नष्टीकरण एक दम बन्द हो जाता ह और अनन्त काल तक अक्षुण्ण बना रहता ह।

समाधियो की रूपरेखा के अनुसार उनकी खुदाइ भिन्न भिन्न ढग

से की जाती है। मिस्र की आरम्भकालीन समाधियाँ मरुस्थल के किनारे वालू मे खुदे हुए छिछले गढे के रूप मे पायी जाती हैं। यदि वायु द्वारा प्रसारित वालू को हटा दिया जाय तो ऊपर की वृताकार योजना की स्पष्ट रूपरेखा अभ्यस्त आँखो को समावियो का पता वता देती है। इसी आधार पर यदि वहाँ के गुहा-समावियो पर से वालू और पत्थर के टुकडे हटा दिये जायँ तो वे चट्टाने, जिनमे समावियाँ खोदी गयी है, दीखने लगती है फिर उनकी वाह्य रूपरेखा भी ज्ञात हो जाती है। उसके वाद तो गढे का कूडा कर्कट ही हटाना रह जाता है। अन्तत. तीस-चालीस अथवा सौ फुट जाने पर गुहा का द्वार मिल जाता है। कर्णमिश मे सर ऊले को घास के गुच्छो के आधार पर समाधियो का अनुमान हुआ था, यह हम आरम्भ के पृष्ठो मे उल्लेख कर चुके है। उर मे समाधियो के ज्ञान का कोई प्रत्यक्ष साधन नही है। वहाँ तो दूर तक भूमि खोदने की आवश्यकता होती है। वहाँ समावियाँ एक के ऊपर दूसरी, इस प्रकार नीचे तक चली गयी होती है। यहाँ तक कि ८० गज लम्वे ६० गज चौड़े और ४० फुट गहरी खुदाई मे पुरातत्वविदो को १८०० समाधियो के चिह्न प्राप्त हुए थे।

समाधियो की खुदाई मे मूल सिद्धान्त यही रहता है कि कोई चीज अपने स्थान से हटाई न जाय। यही सिद्धान्त भवनो और नगरो की खुदाई में भी लागू होता है। फोटो, नकशा, विवरण आदि प्रत्येक आलेखन मे प्रत्येक वस्तु का यथास्थान निर्देश होना चाहिये। यह वात सुनने मे विचित्र तथा कार्य व्यवस्था मे व्यर्थ तूल सा जान पड़ता है किन्तु व्यवहारिक दृष्टि से यह वात नही है। सम्भव है इस प्रकार के सूक्ष्म परीक्षण का परिणाम स्वल्प हो पर उससे वहुत कुछ ज्ञात होने की सम्भावना वनी रहती हैं। पुरातत्वविद् को तो प्राप्त होने वाली चीजो से ही प्रत्येक वातो का ज्ञान प्राप्त करना पडता है, इसलिए जो कुछ भी सामग्री हो, उसकी उपेक्षा उसके लिए सम्भव नही है, भले ही उस समय उसकी समझ मे उसका कोई मूल्य न जान पडे।

समाधि की स्थिति और उसकी गहराई का अध्ययन करने और प्राप्त वस्तुओं तथा समाधि के विवरण के आलेखन के बाद पुरातत्वविद का ध्यान उसमें पायी गयी वस्तुओं की ओर जाता है। समाधि की किसी वस्तु को प्रायः अपने स्थान पर रहने देना सुगम नहीं है। समाधियों की प्रायः ऐसी अवस्था होती है कि बिना हानि पहुँचाये उनमें किसी वस्तु का या उसके आस-पास की भूमि को छुआ नहीं जा सकता। उन स्थानों में जहां शव अत्यन्त निकट और ऊपर नीचे रखे गये हों, वहां किसी एक समाधि की रूपरेखा का निश्चय करना बहुत ही कठिन होता है। ऐसी अवस्था में किसी के लिए यह निर्णय करना कि अमुक वस्तु अमुक समाधि की है दुष्कर सा होता है। हो सकता है कि किसी समाधि की खुदाई के समय मिली कोई वस्तु किसी अज्ञात समाधि के किसी अन्य वस्तु का भाग या अंश हो। देखने में तो ऐसा जान पड़ता है कि किसी वस्तु के एक दूसरे समाधि से सम्बद्ध हो जाने से कुछ बनता बिगड़ता नहीं पर बात वस्तुतः ऐसी नहीं है। किसी वस्तु के इधर उधर हो जाने में पुरातत्वविद को काल निर्णय में कठिनाई हो सकती है। यही बात नगर और भवनों की खुदाई में भिन्न स्तरों की चीजें एक दूसरे में मिल जाने पर हुआ करती है।

इसके अतिरिक्त यह बात भी तो सम्भव है कि पितरों का उस समय कुछ भेंट दी गयी हो जब समाधि में मिट्टी डाली जा चुकी हो। इस प्रकार की वस्तु समाधि के धरातल के ऊपर ही कहीं पड़ी मिलेगी। जब तक ये सारी बातें नोट न कर ली जायें, समाधि के साथ उनका सम्बन्ध ज्ञात न हो सकेगा और साथ ही उस विशेष रीति रिवाज का प्रमाण अन्धकार में ही रह जायेगा। इसलिए पुरातत्वविद को समाधि के अस्तित्व का अनुमान होते ही बड़ी सतर्कता से अपना काम आरम्भ करना पड़ता है।

सर उल्ली को उर में एक समाधि का पता भूमि के ऊपर ताम्र के एक भाले की नोक की चमक से चला। उन लोगों ने उसके आधार पर उसके

चारो ओर की भूमि साफ की, फलस्वरूप उन्हे सोने की पतली चादर की बनी नली सी वस्तु दिखाई पडी जो भाले के डडे के ऊपर लगी हुई थी। उसके नीचे उन्हे लकडी के डडे के अस्तित्व के रूप मे एक छेद दिखाई पडा क्योकि लकडी सड कर नष्ट हो चुकी थी। उस छेद के आधार पर उन्होने खुदाई जारी रखी और अन्ततः उन्हे समाधि का पता लगा और वे उस समाधि की रूपरेखा को निर्धारित करने एव कफन के चारो ओर सगृहीत वस्तुओ के आलेखन में सफल हो सके।

एक अन्य समाधि की खोज मे उन्हे एक छेद मिला और उससे कुछ हट कर एक दूसरा छेद दिखाई पडा। उन छेदो की रूपरेखा कुछ असाधारण सी जान पडी, इसलिए लकडी के नष्ट हो जाने से बने उन छेदो मे पुरातत्वविदो ने प्लास्टर आव पेरिस उडेलना आरम्भ किया। फलस्वरूप जो प्लास्टर कास्ट तैयार हुआ वह हार्प नामक वाद्ययन्त्र निकला जिसके सारे अस्तित्व का लोप हो चुका था केवल उसके मुंह पर लगा ताम्र का वृषभ-मुख शेष था। वह भी प्लास्टर कास्ट मे यथा स्थान चिपक गया। इस प्रकार समाधिके अस्तित्व ज्ञान के साथ-साथ अनजाने मे उस अमूल्य वस्तु का सरक्षण भी कर लिया गया जो जरा सी असावधानी से लुप्त हो जाता। इस प्रकार खुदाई मे साधारण सी साधारण वात पर ध्यान रखना आवश्यक होता है।

समाधियो की सफाई एक दुरूह कार्य है। मिट्टी को इस प्रकार हटाना कि सारी वस्तुए यथा स्थान वनी रहे और उनका चित्र भी भली प्रकार लिया जा सके, वहुत समय और धैर्य का काम है। हर समय ध्यान रखना पडता है कि मिट्टी हटाते समय कोई वस्तु अपने स्थान से हट न जाय, वे वस्तुए जिनका अस्तित्व मिट्टी मे ही है, नष्ट न हो जायँ।

समाधियो के सम्वन्ध मे तैयार किये गये विवरणो का अध्ययन कर तत्कालीन समाज के जीवन, रहन-सहन और रीति-रिवाज का वहुत कुछ अनुमान किया जा सकता है। शव की अवस्था और दिशा को देख कर

काल, जाति, धार्मिक विश्वास आदि का निर्णय किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य बातों के सहारे सामाजिक जीवन का भी अनुमान किया जा सकता है। यथा—गले और बाहुओं में विभिन्न प्रकार के आभूषणों के दाने किस क्रम से गूथे थे, यदि पुरातत्वविद् उन्हें उसी क्रम से गूथ सकने में सफल हो, जिस क्रम से वह मूल रूप में गुथा रहा हो, तो वह उससे बहुत कुछ तत्कालीन आभूषणों और उसके फैशन पर प्रकाश डाल सकता है और तत्कालीन पहरावे का ज्ञान हो सकता है। उसका यह ज्ञान बिखरे दानों को एकत्र कर कल्पना करने की अपेक्षा अधिक प्रामाणित होगा। किन्तु ऐसा करने के लिए अन्वेषक को घंटों कंकाल के ऊपर झुके अथवा पड़े रहने का कष्ट उठाना पड़ सकता है।

पुरातत्वविद को अपने विवरण में प्रत्येक वस्तु के नाम और नपी हुई रेखाकृति, समाधि में उनके प्राप्त होने की स्थिति आदि का आलेखन करना पड़ता है। उसके विवरण में अंकित अंक प्रत्येक वस्तु के ऊपर भी लिख दिये जाते हैं ताकि पीछे आवश्यकता होने पर वे सारी वस्तुएं उसी रूप में अध्ययन के लिए सजाई जा सकें जिस रूप में वे पायी गयी थीं। समाधि में प्राप्त वस्तुओं का विवरण तैयार करने का काम उस समय बहुत ही कठिन हो जाता है जब समाधि स्थित वस्तुएं विनष्टप्राय अवस्था में होती हैं अथवा जब किसी विनष्टप्राय वस्तु के संरक्षण की आवश्यकता आ उपस्थित होती है। संग्रहालय में सजी वस्तुओं को देख कर उन वस्तुओं की प्राप्ति में किये जाने वाले श्रम का अनुमान नहीं किया जा सकता। यह कार्य कितने धैर्य का है इसका अनुमान डाक्टर रेजनर द्वारा गीज़ा में बड़े पिरामिड के निकट प्राप्त रानी हतप-हरस की समाधि में किये गये श्रम से किया जा सकता है।

भवन के पीछे, जहाँ पिरामिड के निर्माता राजा केफ्रन की माँ का खाली तावूत रखा हुआ था ईंटों से बन्द ताक के भीतर उन्हें घुन के खाये हुए लकड़ी का आटा और कुछ सोने के पत्तरों के टुकड़े पड़े हुए मिले। जमीन

पर छोटे-छोटे आकृति शब्द चित्र बिखरे हुये थे जो लकड़ी के घुन जाने से गिर गये थे। इन सारी वस्तुओ को यदि यो ही उठा लिया जाता तो उनसे केवल यही ज्ञात हो पाता कि पाँच हजार वर्ष पूर्व मिस्र के शासको की वस्तुए किस प्रकार अलकृत की जाती थी। किन्तु किया यह गया कि खनको ने बडे परिश्रम से उस भवन का एक-एक इच भाग साफ किया प्रत्येक छोटी से छोटी वस्तु का स्थान अकित किया गया और २८० दिन निरन्तर श्रम करके हजारो पेज के विवरण और लगभग एक हजार फोटो तैयार किये गये। फिर लकडी के तीन फ्रेमो और एक तख्ते के आधार पर, जो अपने आकार की छाया मात्र रह गये थे और जिनमे जोड़ के चिह्न वर्तमान थे, वे लोग एक अद्भुत वस्तु—साम्राज्ञी को ले जाने की कुर्सी बनाने मे समर्थ हुए। भूमि पर बिखरे हुए शब्दाकृति अपने स्थानो के आधार पर समूह के रूप मे एकत्र किये गये और फिर उनको इस प्रकार सकलित किया गया कि उचित अर्थ दे सके। वे कुर्सी के ऊपरी भाग को सुशोभित करते थे। इस प्रकार नयी लकडी और पुराने सोने के सयोग से नष्ट हुए मूल वस्तु का निर्माण हुआ। सोने तथा लकडी के अन्य अवशेषो और उसी कष्टसाध्य उपायो से एक आरामकुर्सी, आभूषण का बक्स, चारपाई आदि भी सुरक्षित की गयी। समाधि से इन वस्तुओ के निकलने के पश्चात् उनके सरक्षण मे डाक्टर रेजनर और उनके साथियो को पूरे दो वर्ष लगे। इसी प्रकार उर मे साम्राज्ञी शव-अद के रथ का सरक्षण किया गया। इस रथ की लकडी एक दम नष्ट हो गयी थी। उसके अलकरण के सारे सामान मिट्टी मे चिपके थे। उन्हे उठाने के लिए गर्म लाख का प्रयोग किया गया और इस प्रकार उनका स्थान अक्षुण्ण बनाया गया फिर विवरणो के सहारे नाप तोल कर पाँच हजार बरस पुराने रथ के मूल रूप को बनाने का सफल प्रयत्न किया गया।

पुरातात्विक कार्य के लिए लाख अत्यन्त महत्त्व की वस्तु है और उसका उपयोग बहुत ही सुगम है। उर में निवास करने वाले मनुष्यो

की अस्थिया बाढ के पश्चात पचास फीट से अधिक मिट्टी के नीचे दब गयी और उसके बोझ से चिपटी हो गयी और कही-कही नष्ट होकर एक दम चूर नही हुई थी, वहा उनके छोटे छोटे टुकडे हो गये थे। ककाल की दृष्टि से वे सुरक्षित कहे जा सकते थे और मानुष वैज्ञानिको की दृष्टि से उनका अमूल्य महत्त्व था। पर प्रश्न यह था कि उन्हें सुरक्षित रूप म वहाँ से हटाया कैसे जाय। अस्तु जहा तक सम्भव हो सका मिट्टी खुरच कर साफ कर दी गयी, उसके पश्चात अस्थि तथा उसके आस पास की भूमि पर गर्म करके लाख बिछा दिया गया किन्तु नीचे की मिट्टी शताब्दियो से असूय पश्या रहने के कारण इतनी नम हो गयी थी कि ऊपर ही चपड की हलकी पत पड कर रह गयी और भीतर प्रवेश न कर सकी। ऐसी अवस्था म किया यह गया कि गर्म लाख में कपडे के हलके-हलके पत भिगो कर अस्थि के ऊपर रख कर दबाये गये ताकि लाख म अस्थि अच्छी तरह चिपक जाय। जब इस प्रकार ऊपर का सारा अश ढका जा चुका तो धीरे धीरे नीचे की मिट्टी हटाई गयी और अस्थि को मिट्टी के दो तीन पतले-पतले स्तम्भो पर टिका रख कर रुई के फाये बिछाये हुए तख्त पर उलट दिया गया। पश्चात रही सही मिट्टी साफ कर चपड के पत से दुबारा अच्छी तरह ढक कर सुरक्षित बना दिया गया। इस प्रकार अस्थि को सुरक्षित कर अस्थि को लदा भेजा गया। वहा ऊपर का लाख हटा कर बचाए चपडे को बेन्जिन से धोकर साफ किया गया पश्चात विकृत हड्डियो को हाइड्रोजन पराक्साइड से धोकर सख्त कर लिया गया। इस प्रकार अस्थि, अपने मूल रूप म बिना एक भी टुकड के व्यतिक्रम हुए ही प्रदर्शित किया जा सका।

मेसापोटामिया म अन्वेषको के सामने लिखित फलको के, जो अत्यन्त महत्त्व की पुरातात्विक सामग्री है सरक्षण की समस्या उपस्थित होती है। बहुधा ये फलक कच्ची मिट्टी के होते है और नम मिट्टी म दबे होने के कारण वर्षो के सामन अत्यन्त नम हो गये होते है और आस पास

की मिट्टी से चिपके रहते हैं। उनको साफ कर सुरक्षित रखना एक जटिल कार्य है। यो साफ करने मे चिह्नो के मिट जाने का भय होता है, और चिह्नो के ही कारण उन फलको का महत्त्व होना है। यदि उन्हे यो ही उठा कर रख दिया जाय तो उनके फट जाने और कभी-कभी चूर हो जाने का डर रहता है। फिर वहाँ की मिट्टी मे लोना होने की अधिक सम्भावना होती है। अत उनके निर्यात मे भी टूट जाने का भय बना रहता है। इन सब के ऊपर खुदाई करने वाले पुरातत्वविद् के लिए आवश्यक है कि वह जल्दी से जल्दी उनमे अकित बातें, यथा—तारीख, निर्माता का नाम आदि ज्ञात करे और उनसे अपने काम मे सहायता ले। इसलिए उर मे खुदाई करने वाले पुरातत्वविदो को ज्योही किसी मिट्टी के टुकडे के भीतर फलक होने का अनुमान हुआ, वे उसे साफ बालू से भरे डिब्बो मे बन्द कर सूखने को रख देते है फिर उन बन्द डिब्बो को भट्ठी मे डाल कर लाल कर लेते हैं जिससे मिट्टी पक जाती है। उसके बाद वे फलक को निकाल लेते हैं। यद्यपि उनके रग मे परिवर्तन हो जाता है, तथापि फलक सख्त और मजबूत हो जाते है और उनके टुकडे आसानी से जोडे जा सकते हैं और चिह्नो के मिटने के भय के बिना ही उन्हे ब्रश से साफ किया जा सकता है। इस प्रकार कोई भी लेख चाहे वह कितना ही छोटा क्यो न हो, पूर्ण रूप से सुरक्षित हो जाता है।

इस प्रकार मैदानो मे किया जाने वाला पुरातात्विक कार्य एक प्रकार से पुरातत्व की भूमिका मात्र होता है। उसे सुरक्षित रूप से हटा कर उसके पूरक अगो को एकत्र करना, प्रदर्शन योग्य बनाना बहुधा उलझन-पूर्ण और कठिन कार्य होता है और वह किसी सग्रहालय की रसायन-शाला मे ही, जहाँ सब प्रकार की सुविधा और रसायन प्रयोग का प्रबन्ध हो, किया जा सकता है। इस क्षेत्र मे भी पुरातत्वविद् को विस्तृत ज्ञान होना आवश्यक है ताकि वह सरक्षण की ओर समुचित ध्यान दे सके। यदि उसे इसका ज्ञान पूर्ण रूप से नही है तो उसके सरक्षण का प्रयत्न भी

कभी-कभी उसके विनाश का कारण हो सकता है। संरक्षण का कार्य स्वतः एक विस्तृत विज्ञान है। उसकी चर्चा इस पुस्तक में सम्भव नहीं है। इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि खोद कर निकाली गयी वस्तुओं का संरक्षण पुरातत्त्वविद का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। खुदाई के बाद वह उसी की ओर ध्यान देता है।

पंचम अध्याय

इतिहास का निर्माण

हमने अब तक जो कुछ कहा है वह केवल भूमि में दबी हुई प्राचीन काल की वस्तुओ को भूमि से बाहर निकाल कर सरक्षित करने से सम्बन्ध रखता है। पर सच पूछा जाय तो पुरातत्वविद् की विद्वता की परीक्षा इतना सब कुछ करने के बाद ही आरम्भ होती है। वह अपनी खुदाई मे प्राप्त चीजो की व्याख्या करके हमारे सम्मुख उस युग के इतिहास के विभिन्न पहलुओ को उपस्थित करता है। यही सामान्य पाठक के लिए कौतूहल का विषय है।

पहली स्मरणीय बात यह है कि हम ज्यो-ज्यो प्राचीन काल की ओर विचार करते है, हमारे ज्ञान की परिधि सीमित होती जाती है और उसके लिए हमे अवधि की बडी इकाई निर्धारित करनी पडती है। पुरातत्व मे प्रागैतिहासिक काल के लिए शताब्दी जैसी इकाई छोटी मालूम पडती है। तथापि यह बहुत सभव है कि उस समय भी एक शताब्दी मे उतने ही परिवर्तन हुए हो जितने कि आज की शताब्दी मे हो रहे है। ऐसी अवस्था मे यदि कोई पुरातत्वविद् अपनी खुदाई की उन सारी वस्तुओ को जो ४०० वर्ष के काल के बीच की हो, एक स्थान पर एकत्र कर दे तो यह तो निश्चित है कि किसी के लिए भी यह सम्भव न होगा कि उन ४०० वर्ष के बीच के किसी काल की अवस्था को उन वस्तुओ को देख कर बता सके। आज का जीवन अकबर काल (१५५६–१६०५ ई०) के जीवन से एक दम भिन्न है। यह हम सब जानते है। किन्तु यदि इन ४०० वर्षो के बीच भारतीय गृहस्थ-जीवन मे काम मे आने वाली सभी चीजो, वस्त्रा-

भूषण आदि सब को एक स्थान पर मिला कर रख दिया जाय और कोई इतर-लोकवासी उसे आकर देखे तो वह केवल इतनी ही कल्पना कर सकेगा कि इस काल की सभ्यता उन्नत थी पर किस समय कैसा रहन-सहन था इसकी वह कदापि कल्पना न कर सकेगा। किन्तु यदि वे ही वस्तुएं काल क्रम से सकलित कर दी जायें तो वह इतरलोकवासी अपनी बुद्धि का उपयोग कर न केवल अलग अलग काल का ही ज्ञान प्राप्त कर लेगा वरन उसके विकास क्रम का भी उसे अनुमान हो सकेगा। ठीक इसी बात को पुरातत्वविद अपनी खुदाई में प्राप्त चीजों के आधार पर उपस्थित करने की चेष्टा करता है।

जिन स्थानों से अभिलेख या अभिलेख अंकित मुद्राएं प्राप्त होती हैं वहां की खुदाई से प्राप्त सामग्री से इतिहास ज्ञान का विस्तार सुगमता से हो सकता है। सूडान प्रांत के मेरो नामक स्थान में डाक्टर रीजनर ने कतिपय ऐसे पिरामिडों की खुदाई की जो अन्य अवैज्ञानिक खनकों की दृष्टि से बच गये थे। वहां प्राप्त अभिलेखों से ज्ञात हुआ कि वे इथोपिया (अबीसीनिया) के राजा और रानियों की समाधियां हैं। ७वीं शताब्दी ईसा पूर्व के लगभग मिस्र पर इथोपिया निवासी शासकों का अधिकार था। उनके नाम तो अन्यत्र मिलते थे पर यह तनिक भी ज्ञात न था कि ये विजेता अपने दक्षिणी निवास स्थान में किस प्रकार आविर्भूत हुए और मिस्र से निकाले जाने पर उनका क्या हुआ। डाक्टर रीजनर को सारी समाधियों का काल क्रम बिठाने में सफलता मिली और उसके आधार पर वे सारे वंश की वंशावली तयार करने में समर्थ हुए। इस प्रकार केवल एक खुदाई में प्राप्त सामग्री के आधार पर उस स्थान का विस्तृत इतिहास लिखा जा सका और सभ्यता का ज्ञान हो सका जो किसी समय मिस्र में व्याप्त था। हमारे यहाँ कौशाम्बी का नाम बौद्ध-साहित्य में बहुत मिलता है पर उसका इतिहास लुप्तप्राय है। आज हमें उसके कितने ही शासकों का पता केवल उनकी मुद्राओं से लग सका है यद्यपि हम अभी उनके कालक्रम को क्रमबद्ध नहीं कर सके हैं।

यदि किसी खुदाई मे कोई लिखित सामग्री न मिले तो पुरातत्वविद् को अपने अन्य साधनो की सहायता लेना होगा। उसे पूर्व देखी हुई वस्तुओ के आधार पर निष्कर्ष निकालना पडेगा और उस निष्कर्ष की सत्यता उसके विवरण की पूर्णता और यथातथ्य होने पर निर्भर करता है। पहले हमने इस बात का सकेत किया है कि किसी वस्तु का किसी गलत समाधि से सम्बद्ध कर दिये जाने पर कालक्रम की सारी व्यवस्था बिगड सकती है। यह बात भवनो के स्तरो के सम्बन्ध मे भी है। चाहे यह बहुत अशो मे सत्य न हो, तथापि यह तो निश्चित है कि जब तक सही रूप से वस्तुओ का चयन न हो, कोई भी कालक्रम ठीक रूप मे निश्चित नही किया जा सकता।

जहाँ भवन अधिक होते है अथवा समाधियो की सख्या अधिक होती है और वस्तुए भी प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होती है, वहाँ बहुत कुछ अशो मे नवीनतम और प्राचीनतम वस्तुओ मे भेद करना सम्भव होता है। कुछ प्रकार की वस्तुओ मे कला के विकास का चिह्न निश्चित रूप से प्राप्य होता है, फिर वस्तुओ के धीरे-धीरे रूढिगत बनने, उनके अलकरण के विकृत होने, बर्तनो के रूपो मे परिवर्तन के चिह्न आदि बाते किसी भी समय के निश्चित करने मे सहायक होती है। इसलिए पुरातत्वविद् अपने विवरणो के मूल्य का विश्लेषण चार्टो के रूप मे उपस्थित करता है। समानान्तर कोष्टको मे वह प्रत्येक भवन या समाधि का अंक उसके सम्बन्ध के अन्य विवरण तथा उनमे पायी गयी वास्तु-सामग्री लिखेगा फिर उनकी तुलना आरम्भ करेगा। पहले वह ऐसे दस-पाँच भवनो या समाधियो को लेगा जो उसके अनुमान मे आरम्भिक और समकालिक जान पडेगी और उनकी वास्तु-सामग्री की तुलना करेगा तब सम्भवत उसे ज्ञात होगा कि उनमे से कुछ मे बहुत कुछ साम्य है यथा—एक से ही मिट्टी के बर्तन, एक ही तरह के औजार और हथियार उनमे मिलेगे। इसी प्रकार वह दस-पाँच ऐसे भवनो अथवा समाधियो का अध्ययन करेगा जो उसकी

समझ में परवर्ती काल की होगी। उनमें भी उसे पहले वालों वस्तुओं से कुछ समानता जान पड़ेगी किन्तु साथ ही उसे यह भी ज्ञात होगा कि आरम्भकालिक बर्तन और हथियार परवर्ती भवन अथवा समाधि में कम प्राप्य हैं और परवर्ती रूप का आरम्भिक वस्तुओं में अभाव है। यदि वह इन तथ्यों को स्थिर कर लेता है तो उसे एक आधार प्राप्त हो जाता है। अब वह यह मान कर कि उसके ये दोनों समूह आरम्भ और अन्तकाल को व्यक्त करते हैं, वह अन्य भवनों अथवा समाधियों की वस्तुओं की परीक्षा करता है। जिसकी वस्तुएँ उसे पहले समूह के सदृश जान पड़ेंगी वह उस उसमें गिन लेगा। जिसमें आरम्भिक ढंग की वस्तुओं के साथ कुछ दूसरी वस्तुएँ मिश्रित होंगी, जिनके सम्बन्ध में तब तक कुछ भी ज्ञात न होगा, वह अस्थायी रूप से काल के एक अगले कदम को व्यक्त करती हुई अनुमानित की जायेंगी। जिनमें आरम्भकालिक वस्तुओं की संख्या अज्ञात काल की अपेक्षा कम होगी वह काल के दूसरे कदम को व्यक्त करती हुई अनुमान की जायगी। इस प्रकार प्रत्येक समूह वस्तुओं के न्यूनाधिक्य के आधार पर काल को व्यक्त करता हुआ निर्धारित किया जायेगा जो सम्भवतः इस आधार पर अवलम्बित होगा और कालक्रम को व्यक्त करेगा। भवनों में वस्तुओं के वर्गीकरण में स्तरों का बहुत बड़ा आधार होता है। इस कारण उनका विभाजन अधिक सन्देहास्पद नहीं हो पाता। समाधियों के लिए स्तरों जैसी सुविधा नहीं होती है। यदि होती भी है तो उस पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। अतः जब पुरातत्त्वविद् इस प्रकार क्रम से एक निश्चित समाधियों का वर्गीकरण कर लेता है तो वह उस समय की निर्दिष्ट अनिश्चितता को बहुत दूर कर सकता है। तब वह अपने परिणाम की जाँच आरम्भ करता है। वह यह देखता है कि सबसे निचली समाधि के बाद वाली समाधियाँ भूमि में किस रूप में स्थित हैं। अन्य समाधियों की तुलना में उनका अनुमान कितना स्पष्ट हुआ है। बर्तनों और औज़ारों—हथियारों के साथ-साथ नालाओं और

के आभूषणो, मुहरो आदि का समन्वय किस प्रकार का है। यदि इन सब का समन्वय ठीक है, तब तो पुरातत्वविद् के अनुमान का आधार ठीक कहा जायेगा। और उसमे मिलने वाले बर्तन, हथियार आदि को. जो पूर्ववर्ती समाधि मे न हो, उस काल की विशेषता मानी जा सकती है।

अब वह इन नवीन साधनो को आधार मान कर, उन समूहो के वर्गीकरण की परख करना आरंभ करेगा जो आरम्भिक और परवर्ती समाधि-समूहो मे न लाये जा सके थे। उसी प्रकार वह धीरे-धीरे सारी समाधियो को कालक्रम के अनुसार समूहो मे विभक्त कर लेगा जो विकास-क्रम के द्योतक होगे। और उसका यह निष्कर्ष उसी प्रकार का होगा जिस प्रकार के निष्कर्ष पर भवनो के कालक्रम के सम्बन्ध मे भवन के विभिन्न स्तरो पर प्राप्त होने वाली सामग्री से पहुँचा जाता है। इस प्रकार सामग्री के आधार पर भवनो और समाधियो के काल-क्रम के निर्धारित करने की पद्धति मे बहुत थोडा ही अन्तर है।

अब इस प्रकार प्राप्त काल-क्रम को पुरातत्वविद अन्य साधनो के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर वर्षो मे विभाजित कर लेता है। वर्षो मे काल विभाजन के अभाव मे भी उस व्यवस्था के परिणाम का उपयोग फैशन परिवर्तन, और उसके आधार पर रहन-सहन और संस्कृति जानने मे तो कर ही सकता है।

भवनो के स्तरो और समाधियो के समूहो मे प्राप्त वस्तुओ की पारस्परिक तुलना कर उनका एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है और इस प्रकार पुरातत्वविद् प्रत्येक स्तर के काल के रहन-सहन, जीवन-मरण, धर्म-कर्म और रीति-रिवाजो का ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

* * *

सामान्यत पाठकों की दृष्टि से पुरातत्व साहित्य शुष्क और अनावश्यक विवरणो से भरा हुआ जान पडता है। बात ऐसी है भी। पुरातत्वविद् जो कुछ भी लिखता है वह सर्वसाधारण के पढने की वस्तु नही

होती। पुरातत्वविद् अपने विषय को अनन्त और अथाह मान कर अपने निष्कर्ष और उसके आधारभूत प्रमाणों को विद्वानों के सम्मुख उपस्थित कर उनका विश्लेषण करने के लिए आमन्त्रित करता है। ऐसी अवस्था में उनका अध्ययन होना स्वाभाविक है। उनकी बातें जो इतिहास के आधारभूत प्रमाण होते हैं अध्ययन और विश्लेषण के पश्चात् ही सार रूप में व्यक्त हो पाते हैं।

मान लीजिए किसी स्थान से एक नर-कंकाल प्राप्त हुआ। उसका अध्ययन किसी मानुषशास्त्रिक (एन्थ्रोपालॉजिस्ट) का ही काम होगा। वही उसकी शारीरिक विशेषताओं के आधार पर उस कंकाल के जातीय सम्बन्ध का निर्णय करेगा। बहुत सम्भव है उसे एक नयी जाति का ज्ञान हो और उसके आधार पर अनुमानित काल का, हथियारों और वस्तुओं के आधार पर अनुमानित काल का भेद हो सके। उस कंकाल के टूटे जोड़ों की असाधारण अवस्था, दांतों के विकार आदि के परीक्षण से जीवन की अवस्था का ज्ञान होगा। इसी प्रकार टूटी हड्डियों के जोड़ जोड़कर के तत्कालीन शल्यचिकित्सा पद्धति का ज्ञान होगा।

यदि कब्रों पर अंकित आकार और स्थापना पर दृष्टि डालिए तो वहाँ के निवासियों के धार्मिक और [illegible] का अनुमान किया जा सकता है। इसी प्रकार [illegible] के [illegible] की [illegible] व्यक्त करते हैं। समाधियों में शव के [illegible] थे और [illegible] होता कि [illegible] नहीं जाते थे और [illegible] से [illegible] किया जाता था। यह [illegible] का [illegible] है।

[illegible] १५०० ई० पू० [illegible] समाधियाँ [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] थी। [illegible]

वाजार मे मिलती तो उनकी उपयोगिता तनिक भी ज्ञात न हो पाती। किन्तु अपने उचित स्थान पर मिलने के कारण हमें उसके बाँधने का मूल ढग भी मालूम हो सका।

इसी प्रकार आरम्भिक सुमेर चित्रो मे साधारणतया आदमियो का सर घुटा हुआ मिलता है जिससे जान पडता है कि वे लोग वाल नही रखते थे। कुछ काल के वाद के चित्रो मे लोगो के लम्बे-लम्बे वाल दिखाई पडते है, जिससे अनुमान होता है कि ये दूसरी जाति के लोग होगे। दूसरी ओर वहाँ के शासको की समाधियो मे साधारण व्यक्तियो के सरो पर सोने अथवा चाँदी के दुहरे चैन के साथ धागे मे वधे सोने और लाजवर्द के दानो की माला पडी पायी गयी है। उन्हे अरवो द्वारा सर पर वाँधे जाने वाले अगेल का रूप कह सकते है। उन्हे देख कर अनुमान होता है कि प्राचीन सुमेर निवासी घुटे हुए सर पर कपडा डालते रहे होगे। वहाँ की एक समाधि मे सर की इस माला के अतिरिक्त कफन के एक कोने मे हलके भूरे रग की धूल सी थी जिसमे वाल का अस्तित्व था। उसके ऊपर सर की सोने की माला पडी हुई थी। उसे देख कर अनुमान किया जाता है कि किसी विशेष अवसर पर सुमेर लोग किसी तरह का 'विग' पहनते रहे होगे।

प्राप्त-सामग्री को देखकर तत्कालीन लोगो की रुचि, विचार तथा उनके कला-कौशल का भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

इसी प्रकार भूगर्भवेत्ता उन वस्तुओ का अध्ययन कर यह वता सकता है कि उन वस्तुओ मे प्रयुक्त सामग्री कहाँ से प्राप्त होती थी। कभी-कभी वे वस्तुए विदेश से आयी ज्ञात होती है तो उसके आधार पर विदेशो से सम्वन्ध, व्यापार आदि का मार्ग ज्ञात होता है। क्रीमिया, शाम और हगरी की समाधियो के देखने से पता चलता है कि वाल्टिक के अम्बर के व्यापारियो ने अपना व्यापार सुदूर दक्षिण तक फैला रखा था। उर के शासको की समाधियो से जो हथियार प्राप्त हुए है, वे कॉस्य के है और